Part - 1

chap- 1

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय

वाजपेयी जी की जीवनी तथा विचारधारा

प्रथम अध्याय

"वाजपेयी जी की जीवनी तथा उनकी विचारधारा"

हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी का नाम बड़े आदर एवम् सम्मान के साथ लिया जाता है। हिन्दी के इस कर्मठ साहित्यकार ने अपने अनेक ग्रन्थरत्नों से हिन्दी-साहित्य के भण्डार को भरा है। अभावों में जीनेवाला, विषम परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष करनेवाला तथा जीवन से मुँह न मोड़ने वाला यह साहित्यकार आज भी लगभग तिहत्तर वर्ष की आयु में सतत लिखता जा रहा है। ऐसे साहित्यजीवी कथाकार के जीवन के विविध पक्षों और घटनाओं का ज्ञान उपन्यास-साहित्य के अध्येता और पाठक के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय हो सकता है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी का संपूर्ण साहित्य उनकी निजी अनुभूतियों का लिखित दस्तावेज़ है। प्रेमचंद के उपरान्त वाजपेयी जी एक ऐसे साहित्यकार के रूप में हमें मिलते हैं, जिन्होंने अपने जीवन में जो देखा और भोगा है, उसे ही लिपिबद्ध किया है। उनके साहित्य की विवेचना सम्यक् रूप से तो हम अगले अध्यायों में करेंगे ही; किन्तु उनके साहित्य को समझने के लिए तथा उसके मर्म के उद्‌घाटन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम वाजपेयी जी के उस सर्जक व्यक्तित्व से भी परिचय प्राप्त कर लें, जिसकी अमिट छाप उनके कृतित्व पर पड़ी है।

किसी भी साहित्यकार की जीवनी-लेखन में उस साहित्यकार द्वारा लिखी हुई उसकी डायरी, आत्मकथा, उसके द्वारा अपने मित्रों के नाम लिखे गये पत्र तथा मित्रों के द्वारा लिखे गये उसके नाम पत्र आदि सामग्री का काम देते हैं, परंतु इन उपकरणों में वाजपेयी जी के पास न तो डायरी है, जिसमें उन्होंने अपने जीवन की गोपनीय बातें भी लिखी हों, न अद्यपर्यन्त आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया है, न ही साहित्यकार मित्रों के साथ किये गये पत्र-व्यवहार की व्यवस्थित रूप से फाइल ही उनके पास है। ऐसी परिस्थिति में किसी भी अध्येता को कुछ अन्य साधनों की ओर उन्मुख होना पड़ता है, जिनमें अध्येता द्वारा साहित्यकार से साक्षात्कार करना, उसके सामने उसके जीवन से सम्बन्धित प्रश्नावली प्रस्तुत करके उनके उत्तरों की प्राप्ति करना अथवा स्वयं समय-समय पर जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित प्रश्न उठाकर या जिज्ञासाएँ व्यक्त करके पत्र लिखना आदि बातों का समावेश होता है। इनकी सहायता से जीवनी सम्बन्धी तथ्य ज्ञात होते हैं। तीसरा स्रोत यह भी है कि स्वतंत्र रूप से कुछ आलोचकों अथवा लेखकों ने उस साहित्यकार के जीवन पर यदा-कदा जो विचार किन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट किये हैं, उनका भी उपयोग किया जाय।

हम अन्यत्र यह लिख चुके हैं कि वाजपेयी जी ने न तो आत्मकथा लिखी है, न दैनंदिनी ही लिखने की आदत डाली है और न मित्रों द्वारा लिखे गये पत्रों को ही क्रमबद्ध रूप से सुरक्षित रखा है । अतएव वाजपेयी जी के जीवन के सम्बन्ध की सामग्री उपर्युक्त द्वितीय प्रकार के साधन द्वारा ही उपलब्ध की गई है । यह सही है कि भेंट होने पर साहित्यकार के जीवन के सम्बन्ध में कुछ जाना जा सकता है ; किन्तु कुछ साहित्यकार आत्म-प्रशंसा से बचते हैं , कुछ साहित्यकार आत्म-प्रशंसा करके झूठी बातें भी कह सकते हैं, तो कुछ अपने जीवन की गोपनीय बातें प्रकाश में लाना पसन्द नहीं करते । वाजपेयी जी से साक्षात्कार करने पर जो कुछ ज्ञात हो सका है उसके तथा पुरजन, परिजन एवं आत्मीयजनों से हुई बातचीत तथा पत्र-व्यवहार के आधार पर इस अध्याय में उनकी जीवनी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जा रहा है । जीवनी-लेखन में वाजपेयी जी के वंश-परिचय, जन्मकाल, बाल्यावस्था, शिक्षा-दीक्षा, विवाह तथा संतति, सम्पर्क, कार्यक्षेत्र आदि पक्षों पर विचार करना समीचीन है । सर्व प्रथम हम वाजपेयी जी का वंश-परिचय देते हैं, जिसके परिप्रेक्ष्य में उनके जीवन के विविध पक्ष स्वत: उद्घाटित होते जाएंगे ।

वंश - परिचय :

वे लोग अधिक भाग्यशाली होते हैं, जो अपने पितृपक्ष तथा मातृपक्ष दोनों ओर के पारिवारिक सुखों का आनन्द प्राप्त करते हैं ; किन्तु वाजपेयी जी ऐसे भाग्यशालियों में से नहीं हैं । बालक भगवती प्रसाद, जिस पर उसके पैतृक गुणों तथा संस्कारों का प्रभूत प्रभाव पड़ना चाहिए था, उससे वह वंचित रह गया । पितामह की दुलार भरी गोद और आशीर्वाद उसे नहीं मिला । भगवती प्रसाद जी ने अपने पितामह को कभी नहीं देखा । बस, मात्र इतना सुना है कि वे बन्नापुर(कहिंजरी) जिला-कानपुर के निवासी थे । यही नहीं, उन्होंने अपने पिता जी की जन्मभूमि के भी कभी दर्शन नहीं किये । पिता-पितामह के गाँव की धरती, जिससे बालक भगवती प्रसाद का सहज लगाव हो सकता था, वह नहीं रही । इसकी वेदना वाजपेयी जी को न हुई हो ऐसी बात नहीं है । एक संवेदन-शील बालक के मन पर इसका प्रभाव पड़े बिना न रहा होगा । साहित्यकार वाजपेयी जी लिखते हैं -" मैं वह घर भी देखने कभी नहीं गया, जिसमें मेरे पिता जी का जन्म हुआ । इसका एक कारण यह भी रहा कि मैंने सोचा कि जो भूमि पिता जी को अपनी गोद में नहीं रख सकी, उसके साथ मेरा क्या नाता हो सकता है ?"[1] ऐसे भावों का एक संवेदन-शील व्यक्ति के मन में उद्भव होना स्वाभाविक भी है ।वस्तुत:उनके पितामह की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी न थी ,

1- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से

जिससे पूरे परिवार का निर्वाह चल सकता । [1] पितामह की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उनके तीनों पुत्र अपना घर छोड़कर यत्र-तत्र अवलम्ब पाकर वहीं स्थिर हो गये । पिता जी के बड़े भ्राता पं0 बिहारीलाल दखलीपुर चले आये, जहाँ उनकी ससुराल थी और मेरे छोटे चाचा पं0 मुसद्दीलाल वाजपेयी कहिंजरी चले आये । [1] कहिंजरी में मुसद्दीलाल का ननिहाल था । वाजपेयी जी के ताऊ जब अपनी ससुराल दखलीपुर चले गये, तो उन्हें वहाँ अपनी ससुराल का अवलम्ब मिला । वाजपेयी जी के पिता पं0 शिवरतन लाल ने भी परिस्थितिवश इसी परम्परा का अनुसरण किया और अपनी ससुराल मंगलपुर में बस गए ।

वाजपेयी जी के नाना पं0 लालाराम मिश्र दर्शनशास्त्र के पंडित थे । वे अपने गाँव मंगलपुर की संस्कृत पाठशाला के प्राचार्य थे । मामा जगन्नाथ प्रसाद मिश्र संस्कृत - साहित्य, व्याकरण और धर्मशास्त्र के पंडित थे । श्री मद्भागवत की कथा वे बड़े ही मनोयोग से कहते थे । यज्ञोपवीत तथा वैवाहिक संस्कारों में वे सादर निमंत्रित किये जाते थे । तब उन्हें भेंट में यथेष्ट धन तथा मूल्यवान् पदार्थों की प्राप्ति होती थी ; किंतु दुर्भाग्य से उनका स्वर्गवास वाजपेयी जी के बचपन में ही हो गया । उनका उत्तराधिकार वाजपेयी जी के बड़े भ्राता राम भरोसे ने ग्रहण किया। वे ज्योतिष शास्त्र में निष्णात थे । वाजपेयी जी की जीवन-विषयक उन्होंने जो भविष्यवाणी की थी, वह सर्वथा सत्य निकली, ऐसा वाजपेयी जी कहते हैं । इसी विद्या के आधार पर वे अपने विषय में यह जान गये थे कि युवावस्था में ही उनका साकेतवास हो जायगा ।

वाजपेयी जी के पिता जी दो साधनों द्वारा अर्थोपार्जन कर लेते थे । प्रथम कृषि और द्वितीय धार्मिक कर्मकाण्ड करवाने से प्राप्त धन । इससे परिवार का निर्वाह सरलतापूर्वक चलता था । वे अधिक पढ़े-लिखे न थे । अत्यंत साधारण स्थिति के कृषक होने के कारण कृषि के साथ-साथ वे पंडिताई भी करते थे । अपने गाँव में उनका परिवार प्रतिष्ठा प्राप्त था । वे परम धार्मिक, सात्विक, परोपकारी, विनयशील और चरित्रवान् होने के कारण गाँव के श्रद्धास्पद व्यक्ति थे ।

1- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से

:4:

जन्म :

ऐसे संस्कारी परिवार में सं0 1956 विक्रमी, आश्विन शुक्ल 7, बुधवार, तदनुसार 11 अक्टूबर[1] सन् 1899 ई0 को शिवरतनलाल की पत्नी लक्ष्मी देवी ने एक पुत्र - रत्न को जन्म दिया। यह घटना ऐसी थी जैसे सरस्वती-पुत्र ने लक्ष्मी की कोख से जन्म लिया हो। श्री अमृतलाल नागर सं0 1956 विक्रमी का महत्त्व स्वीकार करते हुए लिखते हैं -" विक्रमी संवत् 1956 दो दृष्टियों से उल्लेखनीय है। उस वर्ष मारवाड़ - आगरा तक अकाल फैला था ---- संवत् '56 में ही मंगलपुर ग्राम में कलाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी का जन्म हुआ।"[2] उस समय यह किसे ज्ञात था कि सामान्य कान्यकुब्ज परिवार के उपमन्यु गोत्र में[3] जन्म लेने वाला यह बालक एक दिन हिंदी-साहित्य का लब्ध-प्रतिष्ठ कथाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी के रूप में गौरवान्वित होगा ?

बाल्यकाल :

सामान्यत: प्रत्येक व्यक्ति का अपने बाल्यकाल में कोई न कोई प्यार - दुलार का नाम रहता है। इस दृष्टि से विचार किया जाय, तो वाजपेयी जी का भी बचपन का कोई-न-कोई नाम अथवा उपनाम अवश्य रहा होगा, किन्तु काल के चरणों ने उनके स्मृति-पट से वह नाम मिटा दिया, ऐसा वाजपेयी जी कहते हैं। उनके बचपन के नाम के विषय में पूछने पर वाजपेयी जी लिखते हैं कि उन्हें अपने बचपन का प्यार-दुलार का नाम याद नहीं।[4] परन्तु कोई व्यक्ति अपना बचपन का नाम भूल जाये, यह असंभव-सा प्रतीत होता है। अपने इसी पत्र में वाजपेयी जी स्वयं अपने कथन का खण्डन करते हुए लिखते हैं कि

1- साप्ताहिक हिन्दुस्तान के दिनांक 27-10-63 के अंक में अपने लेख में श्री क्षेमचंद 'सुमन' जी ने वाजपेयी जी की जन्मतिथि 28-10-1899 दी है; किन्तु स्वयं वाजपेयी जी ने 11 अक्टूबर को मान्यता दी है। जन्मतिथि की सत्यता के विषय में इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है ? अतएव 11 अक्टूबर को ही हम वाजपेयी जी की जन्मतिथि स्वीकार करते हैं।

2- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सं0 श्री नंददुलारे वाजपेयी तथा अन्य, पृ0 26

3- दे. 'कपट -निद्रा', पृ0 65। प्रस्तुत उपन्यास में वाजपेयी जी ने अपने गोत्र का उल्लेख 'उपमन्यु गोत्रोत्पन्ने -----।' लिखकर किया है।

4 - वाजपेयी जी के दि. १६।११।६९ के पत्र के आधार पर

उन्हें अपने बचपन का प्यार-दुलार का नाम याद नहीं । [1] परंतु कोई व्यक्ति अपना बचपन का नाम भूल जाय, यह असंभव-सा प्रतीत होता है । अपने इसी पत्र में वाजपेयी जी स्वयं अपने कथन का खण्डन करते हुए लिखते हैं कि उनकी मामी उन्हें बचपन में `छोटे` कहा करती थीं । यह भी एक प्रकार से नाम ही हुआ , किंतु इस बात का ध्यान उन्हें पत्र लिखते समय संभवत: न रहा होगा । वाजपेयी जी के एक बड़े भाई श्री रामभरोसे , जिनका उल्लेख ऊपर आ चुका है , तथा एक छोटी बहन थी । दोनों भाइयों के बीच अनुपम स्नेह का स्रोत निरंतर प्रवाहमान रहता था । दोनों के बीच कभी मतांतर या मनमुटाव नहीं हुआ ।

बचपन में वाजपेयी जी का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था । माँ की उपस्थिति होने पर भी उनका पालन-पोषण मामी ने किया । मामी के कोई संतान न थी; अत: अपने हृदय के उमड़ते स्नेह को उन्होंने अपने भानजों में उंडेल दिया । दोनों भानजों में मामी को भगवतीप्रसाद पर अपेक्षाकृत अधिक स्नेह था । अपने बचपन का संस्मरण याद करते हुए वाजपेयी जी लिखते हैं-` मेरी मामी मुझे `छोटे` कहा करती थीं । वास्तव में सगी माँ का उतना प्यार मुझे नहीं मिला, जितना मामी का । उनके कोई संतान न थी । हमीं लोग उनकी संतान थे । इसलिये मैं उन्हें मामी न कहकर `अम्मा` कहता था ।`[1 2] मामी के इस स्नेह का वर्णन वाजपेयी जी ने अपने एक उपन्यास `अनाथ पत्नी` में[2 3] किया है ।प्रस्तुत उपन्यास के सुशील और उसकी मामी के बीच जिस स्नेह का वर्णन किया गया है, उसे पढ़ते ही सुज्ञ पाठक शीघ्र समझ जाता है कि सुशील और कोई नहीं, वाजपेयी जी ही हैं । इस उपन्यास में मिश्र परिवार, सुशील के माध्यम से वाजपेयी जी की रुग्णावस्था, मामी के निस्संतान होने तथा उनके स्नेह का, कान्यकुब्ज समाज आदि का वर्णन किया गया है। बिना अनुभूति के ऐसा लिखना संभव प्रतीत नहीं होता ।

बाल्यकाल में, विशेषत: वर्षाऋतु में, वाजपेयी जी का संपूर्ण शरीर फुंसियों के घावों से भर जाता था ।[3 4] यह देखकर माँ एवं मामी अत्यंत व्याकुल हो जाती थीं ।वाजपेयीजी

1- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र के आधार पर ।

1- 2- वाजपेयी जी का दिनांक 16-11-69 का पत्र ।

2-3- दे `अनाथ पत्नी` पृ0 36-37

3-4- आज भी वे इस रोग से पूर्णत: मुक्त नहीं हो पाये हैं । आज भी वर्षाऋतु में फुंसियाँ उन्हें परेशान करती हैं । इस रोग का वर्णन उन्होंने अपने उपन्यासों में भी किया है ।`गुप्तधन` का पृ0 131 तथा `अनाथ-पत्नी` का पृ0 36 इस रोग के उल्लेख के लिए देखे जा सकते हैं ।

की माँ अंधविश्वासी थीं, अतः उन्होंने यह सोचकर कि वह शायद मामी के हाथों जी जाय, उन्हें सौंप दिया था । मामी ने बालक को अपनी ही संतान समझ कर उसकी यथोचित सेवा-सुश्रूषा की । दिन-प्रतिदिन बालक को स्वास्थ्य-लाभ होने लगा । वाजपेयी जी के बचपन की एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख एक लेखक ने इस प्रकार किया है -" एक बार वाजपेयी जी अपनी माँ के नहाने गये हुए थे । पता नहीं कैसे वह एक ऐसे जलाशय के पास पहुँच गये , जो भयानक और गहरा था । जिज्ञासावश गहराई का पता लगाने के लिए वाजपेयी जी अपने कदम आगे बढ़ाने लगे । कुछ दूर जाने पर उन्हें आभास हुआ कि जलाशय उथला है । इसके बाद निर्भीकता से इन्होंने अपना दायाँ पैर बढ़ाया । गहराई इनके पीछे पड़ गई । यह डूबने-उतराने लगे । हाँ, मन में एक बात अवश्य थी -" मैं मर नहीं सकता । कोई-न-कोई मुझे अवश्य बचा लेगा ।` थोड़ी ही देर में दो डुबकियाँ लग गईं । तीसरी डुबकी के समय किसी ने इनको पकड़ कर निकाला । चेतना आने पर बोले -` और तो सब ठीक है । मैं भी ठीक हूँ । बच भी गया हूँ ; किंतु भगवान का पता नहीं है, जिन्होंने मुझे बचाया है ।"[1]

इस रोमांचक घटना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईश्वर के प्रति वाजपेयीजी के हृदय में बचपन से ही अत्यंत आस्था थी । उस आस्था का दिन-प्रतिदिन विकास होता गया । उनकी रचनाओं में भी उनकी यह आस्था प्रतिबिम्बित हुई है ।[2] कुछ आलोचक उन्हें घोर व्यक्तिवादी, कुछ आदर्शवादी तथा कुछ यथार्थवादी मानते हैं , किंतु वस्तुस्थिति यह है कि वाजपेयी जी आस्थावादी हैं । उनका सृजन इसका सबसे बड़ा प्रमाण है । अपनी रचनाओं में वाजपेयी जी ने पात्रों के माध्यम से ईश्वर के प्रति आस्था व्यक्त कराई है ।

खेल-कूद के लिए स्वस्थ शरीर की अनिवार्य आवश्यकता रहती है, किंतु हम देख चुके हैं कि शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहने के कारण ही बचपन में ड्रिल के अतिरिक्त अन्य कोई भी खेल खेलना वे पसंद नहीं करते थे । वयस्क हो जाने पर वे ताश अवश्य खेलते थे, और इसमें कुशल भी थे; किंतु पारिवारिक उत्तरदायित्व बढ़ने के साथ समयाभाव के कारण ताश का खेल छूट गया और अब तो वह अतीत की स्मृति- मात्र बन कर रह गया है ।

1- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : शिल्प और चिंतन, डा0 ललित शुक्ल, पृ0 2

2- दे. `टूटा टी सैट`, पृ0 64 तथा 194; `कर्मपथ `, पृ0 54 और 116 ; ` सपना बिक गया`, पृ0 83 ; `एक प्रश्न`, पृ0 140-41, 143, 155, 180; , `भूदान` , पृ0 11 और 37

शिक्षा - दीक्षा :

वाजपेयी जी की शिक्षा का प्रारंभ अपने मामा की देख रेख में घर पर ही हुआ। मामा पं० जगन्नाथ मिश्र संस्कृत के पंडित थे, इसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। उन्होंने भानजे को संस्कृत की शिक्षा देना प्रारंभ किया, वाजपेयी जी ने अपने मामा से न्यूनाधिक मात्रा में संस्कृत का ज्ञानोपार्जन किया ; किंतु यह क्रम दीर्घकाल पर्यन्त न चल सका। इससे पूर्व कि वाजपेयी जी अपने मामा से संस्कृत की पूर्ण शिक्षा ग्रहण कर सकें, सन् 1904 ई० में उनके मामा का देहावसान हो गया। वाजपेयी जी के संस्कृत-ज्ञान का दर्शन उनके कथा-साहित्य के सम्यक् अनुशीलन करने पर अवश्य होता है। संस्कृत-श्लोक तथा तत्सम शब्दों का अपने साहित्य में उपयुक्त उपयोग करके वाजपेयी जी ने अपने संस्कृत विषयक ज्ञान का सुष्ठु परिचय दिया है।

संस्कृत की शिक्षा के अतिरिक्त अन्य विषयों के ज्ञानोपार्जन के लिए वाजपेयी जी मंगलपुर की पाठशाला में जाने लगे। विद्यार्थी-अवस्था के प्रारंभ से ही वे अत्यंत कुशाग्र बुद्धि के थे। सात वर्ष की अवस्था में संस्कृत के अनेक श्लोक उन्हें कण्ठस्थ थे ; किंतु सात वर्ष की आयु में श्लोकों का कण्ठस्थ होना कोई नयी बात नहीं है, विशेषत: अत्यंत कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थी के लिए। जब वाजपेयी जी की आयु केवल सात वर्ष की थी, उस समय का उनकी कुशाग्र बुद्धि का एक प्रसंग द्रष्टव्य है। " इन्सपेक्टर साहब निरीक्षण हेतु आये थे। उन्हें वाजपेयी जी के बाल विद्यार्थी ने उत्साहपूर्वक 'शुक्लां ब्रह्म विचार ----' वाली सरस्वती-वंदना सुना दी थी। बालक की उत्साही प्रवृत्ति से इन्सपेक्टर साहब प्रसन्न हुए थे और बड़ी सराहना की थी।"[1] इस घटना से उनका उत्साह बढ़ गया और उनकी बाल-बुद्धि भी शनै: शनै: विकसित होती गई।

उन दिनों चतुर्थ कक्षा की परीक्षा पूर्ण हो जाने के पश्चात् डिस्ट्रीक्ट-बोर्ड की ओर से एक विशेष परीक्षा ली जाती थी। उस परीक्षा में भाग लेने के लिए वाजपेयी जी कानपुर गये। परीक्षा-फल निकला। वाजपेयी जी ने यह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। फलस्वरूप उन्हें दो रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति मिलने लगी। यह शिक्षा-क्रम नियमितरूप से आगे चलता ही रहा। सन् 1912 ई० में वाजपेयी जी ने प्राइमरी परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। तत्पश्चात् मिडिल स्कूल की शिक्षा की समस्या उनके समक्ष उपस्थित हुई। जब वे विद्यार्थी थे, उस समय

1- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : शिल्प और चिंतन, डा० ललित शुक्ल, पृ० 3

शिक्षा का अधिक प्रचार न था । मंगलपुर ग्राम मिडिल स्कूल से वंचित था । शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी को उन दिनों अनेक कष्ट सहने पड़ते थे । ऐसी परिस्थिति में प्राइमरी स्कूल की शिक्षा पूर्ण होते ही मिडिल स्कूल की शिक्षा-प्राप्ति के लिए वाजपेयी जी को निकटवर्ती अकबरपुर नामक कस्बे में जाना पड़ा । " वाजपेयी जी की मिडिल स्कूल की कहानी बहुत-कुछ वैसी ही है, जैसी पं0 महावीरप्रसाद द्विवेदी की अथवा मुन्शी प्रेमचंद की । इनके निवास-स्थान से 'अकबरपुर मिडिल स्कूल' तीस या बत्तीस मील था । अवारी में आटा, दाल, चावल लादकर ले जाना पड़ता था ।" [1] किंतु कठिनाइयों से वे न हारे । मिडिल फाइनल विशेष भाषा उर्दू लेकर उन्होंने उत्तीर्ण किया ; किंतु पारिवारिक परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि मिडिल फाइनल से आगे वे शिक्षा प्राप्त न कर सके ।

पिता जी की उपस्थिति में उनकी आर्थिक स्थिति चिंताजनक न थी । इस संबंध में वाजपेयी जी लिखते हैं -" मेरे पिता जी के जीवन-काल में ऐसा कोई बहुत बड़ा आर्थिक संकट नहीं था । खाने-पहनने की कमी नहीं थी । आखिर मेरे बड़े भाई औरैया (जिला-इटावा) के विद्यालय में संस्कृत व्याकरण-शिक्षा प्राप्त करने को भेजे ही गये थे और मैं भी अपना गाँव छोड़कर तीस मील दूर अकबरपुर मिडिल स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा ही गया था । हाँ, यह स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है कि हमारे घर की आर्थिक स्थिति उस समय अवश्य चिंताजनक हो गई थी, जब लगातार दो-तीन दुर्भिक्षों के बाद मेरे पिता जी और बड़े भाई के साथ-साथ स्वयं मुझे भी छोटी बहन का विवाह करने के लिए कई वर्षों तक चिन्ता-ग्रस्त रहना पड़ा था ।" [2]

अपनी छोटी बहन के विवाह की समस्या सुलझाने के लिए ही अपनी जन्मभूमि के प्राइमरी स्कूल में केवल चौदह वर्ष की आयु से उन्हें अध्यापन-कार्य प्रारंभ कर देना पड़ा था । उन दिनों उन पर एक और वज्रपात हुआ । प्रथम विश्वयुद्ध की महामारी में उनके बड़े भाई पं0 रामभरोसे का चौबीस वर्ष की युवावस्था में स्वर्गवास हो गया । मामा के बाद अग्रज का अवलम्ब भी छूट गया, अतः उनका पारिवारिक उत्तरदायित्व और बढ़ गया । उनके नियमित शिक्षा-क्रम में इसी कारण व्यवधान उपस्थित हो गया । अध्यापन-कार्य के साथ-साथ विद्यालय की शिक्षा चालू रखना उनके लिए असंभव था, अतः अध्ययन की तीव्र इच्छा होने पर भी परिवार के प्रति अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करने के लिए सदैव के लिए उन्हें विद्यालय का द्वार

1- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : शिल्प और चिंतन, डा0 ललित शुक्ल पृ0 34

2- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से ।

छोड़ना पड़ा । अपनी विद्यार्थी अवस्था के प्रारंभ से ही होनहार विद्यार्थी होने पर भी प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उनकी विद्यालय की शिक्षा समाप्त हो गई ; किंतु लगभग एक दशाब्दी के पश्चात् सन् 1923 ई0 में उन्होंने अंग्रेजी-शिक्षा के लिए एक ट्यूटर नियुक्त किया । अति परिश्रम करने पर भी वे अंग्रेजी अधिक न सीख सके । 'माधुरी' के सहायक संपादक के रूप में नियुक्त हो जाने के बाद सन् 1925 ई0 में बंगाली भाषा की शिक्षा प्राप्त करने का आरंभ ट्यूटर के माध्यम से लखनऊ में किया , परंतु बंगाली ट्यूटर हिंदी नहीं जानता था ; अत: माध्यम की मुश्किल के कारण अध्ययन में असुविधा होने से वे पूर्णरूपेण बंगाली भी न सीख सके । तथापि विविध विषयों के ज्ञानार्जन का क्रम एवं बहुमुखी अध्ययन आज भी चल रहा है । तिहत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में भी उसकी गति में मंथरता नहीं आने पायी है ; किंतु अब पुस्तकों का अध्ययन गौण और मानव-जीवन का अध्ययन प्रमुख हो गया है । उनके भाषा-ज्ञान के संबंध में कहा जा सकता है कि हिंदी के अतिरिक्त अन्य कोई भी भाषा पूर्ण रूप से वे नहीं सीख सके । जो थोड़ा-बहुत अंग्रेजी , बंगाली और मराठी भाषा का ज्ञान अनेक व्यक्तियों के संपर्क तथा प्रदेशों में भ्रमण करने से वे ग्रहण कर सके हैं, उसका उपयुक्त प्रयोग, आवश्यकतानुसार, उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है । इस संबंध में उनकी भाषा के विषय में विचार करते समय विस्तारपूर्वक आगे देखा जायगा।

विवाह और संतति :

उन दिनों कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में भी अन्य वर्गों की भाँति बाल-विवाह का प्रचलन था । जिनका विवाह होता था, उन्हें दाम्पत्य जीवन का किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता था । अभिभावक-वर्ग भी उनकी पसंद-नापसंद की ओर कतई ध्यान नहीं देता था ; किंतु वाजपेयी जी का विवाह उसी बालिका के साथ सम्पन्न हुआ, जिसे वे चाहते थे । डा0 बैजनाथ गुप्त लिखते हैं -" जब वे दस वर्ष के थे और अपने ताऊ के यहाँ आये हुए थे । वहीं उनकी दृष्टि सुखदेई नामक एक बालिका की रूपरेखा पर जा टिकी, जो वाजपेयी जी के ताऊ के साले की लड़की थी । वाजपेयी जी के यहाँ लोग विवाह के लिए आते ही रहते थे । ऐसे अवसर पर उन्होंने संकेत से कह दिया था कि यदि मैं विवाह करूँगा, तो दखलीपुर की उसी लड़की से, अन्यथा नहीं करूँगा । अंततोगत्वा उसी लड़की के साथ वाजपेयी जी का ब्याह हो गया ।"[1] विवाह के समय उनकी आयु केवल बारह वर्ष की थी ।

डा0 बैजनाथ गुप्त के उपर्युक्त उद्धरण में 'रूपरेखा' शब्द-प्रयोग संदिग्ध प्रतीत होता है।

1- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व , डा0 बैजनाथ गुप्त, पृ0, 2

वस्तुत: अल्पायु बालिका के सौंदर्य की कोई ऐसी रूपरेखा नहीं होती, जो किसी अल्पायु बालक को ऐन्द्रिय सुख के लिए आकर्षित करे और बालक उसे अपने जीवन-साथी के रूप में प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर ले। इतनी छोटी बालिका का सौंदर्य तो अविकसित होता ही है और दस वर्ष के बालक में सौंदर्य की समझ भी क्या होती है ? इतना छोटा लड़का अपने जीवन-साथी को पसंद करे और इस बात पर अड़ कर अपनी दृढ़ निर्णय-शक्ति का परिचय दे, यह बात असामान्य प्रतीत होती है। घनिष्ठ मैत्री के कारण वाजपेयी जी ने अपने विवाह की कथा डा० गुप्त को कही थी, जो वाजपेयी जी के मंतव्यानुसार डा० गुप्त को अपनी पुस्तक में नहीं लिखनी चाहिए थी।[1] यदि यह बात अप्रकाशित रखनी थी, तो वाजपेयी जी ने किसी को बतलाई क्यों ? इतना ही नहीं, अपने कथनों का स्वयं वाजपेयी जी खंडन करते हैं। एक ओर तो अपने पत्र में वे स्वीकार करते हैं कि उनका विवाह किसी ने नहीं कराया, वह अपने आप हो गया और उसी पत्र में फिर लिखते हैं -" जब मैं सात - आठ वर्ष का ही था, तभी मुझे देखकर मेरे ससुर स्व० मातादीन मिश्र ने अपना दामाद बनाने का संकल्प प्रकट कर लिया था।"[2] अर्थात् वाजपेयी जी की इच्छा के साथ -साथ उनके भावी ससुर की भी इच्छा उन्हें दामाद बनाने की थी।

सौंदर्य के प्रति उनके मन में किशोरावस्था से ही आकर्षण रहा है। जीवन-साथी-चयन में भी इस आकर्षण का ही हाथ रहा था। वाजपेयी जी जीवन-भर सौंदर्य-देवता के भावुक पुजारी रहे हैं। यह सौंदर्य चाहे प्रकृति के उपादानों का हो, चाहे मानव-सृष्टि में अप्रतिम नारी के अंगों का हो, सौंदर्य जहाँ-कहीं भी उन्हें दिखा है, उसने वाजपेयी जी को आकर्षित अवश्य किया है। स्वस्थ-सुडौल आकर्षक नारी से उन्हें प्रेरणा ही मिली है। उनकी रचनाओं में नारी-सौंदर्य का बड़ा ही मोहक एवं आकर्षक वर्णन मिलता है -

" ये गोरी मांसल अनावृत बाँहें और स्कन्धमूल से ही ऊँचाई का पथ-निर्देश करनेवाले वक्ष-कन्दुक। ये नोकदार नयन, जिनमें आकर्षण का मद और निमंत्रण।"[3]

इस प्रकार के नारी-सौंदर्य के वर्णन उनके अनेक उपन्यासों में प्राप्त होते हैं। इन वर्णनों को पढ़ने से पाठकों के हृदय में नारी के प्रति सदा पूज्यभाव उत्पन्न होना असंभव-सा प्रतीत होता है ; क्योंकि वाजपेयी जी द्वारा चित्रित नारी-सौंदर्य में मांसलता भी दिखाई

1- वाजपेयी जी के सौजन्य से।

2- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से।

3- निमंत्रण, पृ० 11

:11:

देती है । वाजपेयी जी ने सदैव यह चाहा है कि समाज का कल्याण हो । साक्षात्कार के समय जब उनसे पूछा गया, " आप किस उद्देश्य से साहित्य-सृजन करते हैं ?" तब मुस्कराते हुए उन्होंने कहा था, " किसी भी साहित्यकार का उद्देश्य समाज के कल्याण के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?"[1] किंतु इस बात का विशेषत: उपन्यास-लेखन के समय उन्हें विस्मरण हो जाता है , ऐसा प्रतीत होता है ।

सुखदेई जी के साथ विवाह के पश्चात् दाम्पत्य-जीवन की प्रारंभ की तीन दशाब्दियाँ तो सुख-चैन से व्यतीत हुईं; किंतु अपने जीवन के अंतिम लगभग बाइस वर्ष वे अस्वस्थ रहीं । रुग्णावस्था का प्रभाव उनके स्वभाव पर भी पड़ा । यह बात प्रसन्न दाम्पत्य-जीवन केलिए दोनों के बीच दीवार बन कर खड़ी हो गई । पत्नी के चिड़चिड़े स्वभाव का वर्णन वाजपेयी जी ने 'प्रलोभन ' कहानी की बुढ़िया के माध्यम से यथार्थ रूप में किया है । वाजपेयी जी की पत्नी के स्वभाव की अनुभूति जिन्हें हुई है, ऐसे उनके निकटवर्ती मित्रों का कहना है "वाजपेयी जी को पत्नी टॉल्स्टॉय की पत्नी जैसी मिली है ।" किंतु यह संभव है कि वही उनकी प्रेरणा हो । कर्कशा पत्नी के कारण ही टॉल्स्टॉय दार्शनिक बन गये थे । वाजपेयी जी को साहित्य-कार बनाने में उनकी पत्नी का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा हो, यह असंभव प्रतीत नहीं होता । सुखदेई जी से वाजपेयी जी को तीन कन्या-रत्नों की प्राप्ति हुई । इनमें से एक तो दो वर्ष की आयु में ही काल-कवलित हो गई । अपनी उस पुत्री के प्रति असीम स्नेह होने के कारण वे काल के इस वज्राघात को सहने के लिए असमर्थ थे, अत: " अपनी दो वर्ष की बालिका का निधन हो जाने पर पत्नी सहित गंगा में डूब मरने को तैयार हो गये थे ।"[2] किंतु कुटुंबी-जनों के समझाने पर आत्महत्या नहीं करने का उन्होंने संकल्प कर लिया । शेष दोनों कन्याओं का यथा समय विवाह किया गया ।

साक्षात्कार के समय वाजपेयी जी से यह ज्ञात हुआ कि वे घर छोड़कर चाहे कानपुर में कहीं गये हो या कानपुर से बाहर, उन्हें अपनी पत्नी की चिंता सदैव रहती थी । अपनी पत्नी के लिए उनके हृदय में इतना स्नेह था कि अनिवार्य कारण के अतिरिक्त उन्हें घर छोड़ना पसंद न था ।[3] दिनांक 5-1-70 की रात को बारह बजकर सात मिनट पर उनकी पत्नी का

1- वाजपेयी जी के सौजन्य से ।

2- हिन्दी के प्रमुख कहानीकार, राजनाथ शर्मा, पृ0 89

3- वाजपेयी जी के सौजन्य से ।

जीवन-दीप बुझ गया । वाजपेयी जी के जीवन का एकमात्र अवलम्ब भी छूट गया । घर से बाहर जाते समय पत्नी की चिंता जो सदा उन्हें घेरे रहती थी, उससे अब वे मुक्त हो गये । पत्नी की रुग्णावस्था के कारण ही वाजपेयी जी की मानसिक स्थिति कुछ ऐसी हो गई थी कि नींद में भी उन्हें ऐसी अनुभूति होती थी कि जैसे कोई उन्हें पुकार रहा है और अचानक वे जाग जाते थे । अपनी इसी मन:स्थिति का उल्लेख उन्होंने अपने उपन्यास `विजयश्री`[1] में किया है । ऐसी मानसिक स्थिति बन जाने का कारण यही है कि दिन में जो घटनाएँ घटती हैं, उनकी प्रतिक्रिया सुषुप्तावस्था में अचेतन मानस में होती है । पत्नी की रुग्णावस्था के कारण ही वे दिन के समय सदा चिंतित रहते थे । उन चिंताओं की प्रतिक्रिया सो जाने पर होती थी और वे चौंककर जाग जाते थे ।

व्यावसायिक जीवन :

पीछे यह उल्लेख किया जा चुका है कि सतत दो-तीन दुर्भिक्षों के पश्चात् वाजपेयी जी के सामने जब सबसे बड़ी पारिवारिक समस्या-छोटी बहन का विवाह-उपस्थित हुई, तब अपने पिता तथा अग्रज के साथ स्वयं उन्हें भी चिंताग्रस्त होना पड़ा । उनकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि सरलतापूर्वक वे अपनी बहन के विवाह के प्रसंग को निपटा सकते ; क्योंकि कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में दहेज-प्रथा [2] प्रचलित थी और आज भी प्रचलित है । अत: उपस्थित समस्या के समाधान-हेतु परिवार के अन्य सदस्यों के साथ वे भी जुट गये और अपने ही गाँव मंगलपुर [3] के अपर प्राइमरी स्कूल में सहायक अध्यापक के रूप में कार्य करने लगे । वहाँ वे दो वर्ष रहे । उस समय उन्हें आठ रुपये प्रतिमाह मिलते थे; किंतु इस नौकरी से वे संतुष्ट न हुए । भीतर ही भीतर उनकी आत्मा घुट रही थी । देश भक्ति के रंग से वह रंग चुकी थी । शैक्षणिक क्षेत्र उन्हें देश-सेवा के लिए सीमित लगता था, अत: यथाशीघ्र वे इस क्षेत्र के घेरे से

1- दे. `विजयश्री`, पृ0 14

2- इस समस्या को केन्द्र में रखकर वाजपेयी जी ने अपने `अनाथ पत्नी` नामक उपन्यास का सृजन किया ।

3- अपनी जन्मभूमि के वृक्षों, खण्डहर, बाज़ार, सरोवरों एवं देवमंदिरों तथा प्रमुख व्यक्तियों का वर्णन वाजपेयी जी ने अपने उपन्यास `भूदान` में (पृ0 19 से 26) किया है । अपने गाँव के संबंध में उन्होंने लिखा है -`यह ग्राम सचमुच ही कोई अमरपुरी है ।` (पृ0 22)

बाहर निकलना चाहते थे। उनके अंतर में व्याप्त देश-सेवा की उत्कट भावना ने उनके जीवन को एक नया मोड़ दिया।

उन दिनों भारत में 'होमरूल-लीग' आंदोलन का प्रारंभ हो चुका था। अज्ञेय जी, यशपाल जी तथा अन्य साहित्यकारों की भाँति वाजपेयी जी भी देश के स्वातंत्र्य के लिए सक्रिय योग देना चाहते थे ; किंतु एक ओर पारिवारिक उत्तरदायित्व और दूसरी ओर राष्ट्रप्रेम था। अंततोगत्वा दोनों में से परिवार के प्रति अपने कर्तव्य-पालन को उन्होंने प्राधान्य दिया और क़लम के सिपाही बनकर साहित्य के माध्यम से देश-सेवा करने लगे। कुटुम्ब का उत्तरदायित्व निभाने के लिए अपने परिवार में वे अकेले ही प्रमुख पुरुष थे, अतएव, अंग्रेजों के विरुद्ध वे ऐसा कोई भी कार्य नहीं कर सके, जिससे उन्हें जेल-यात्रा करनी पड़ती।

प्राइमरी स्कूल में अध्यापन-कार्य से निवृत्त होने के उपरांत अवकाश के समय में वाजपेयीजी अपने ही गाँव में अपने काव्य-गुरु पं0 बाँके बिहारी चतुर्वेदी[1] के यहाँ उठते-बैठते थे। उनके यहाँ दैनिक 'प्रताप' आता था। वाजपेयी जी नियमित रूप से बड़े मनोयोग से उसे पढ़ते थे। राष्ट्रीय आंदोलन के संवाद पढ़कर भीतर ही भीतर उनका मन उमड़ उठता था। उनके हृदय में सदा यह इच्छा बनी रहती थी कि देश के लिए यथाशक्ति कोई कार्य अवश्य करना चाहिए। देश- सेवा की उनकी इच्छा दिन - प्रतिदिन अधिक बलवती होती जा रही थी, अत: शीघ्र ही होमरूल-लीग के सदस्य बनने के लिए उन्होंने एक प्रार्थना-पत्र कानपुर भेज दिया ; किंतु उनके इस कार्य में व्यवधान उपस्थित हुआ। अंग्रेज सरकार की नौकरी करना और उसी सरकार के विरुद्ध आंदोलन में भाग लेना सरकार का द्रोह करना था। वाजपेयी जी की अंग्रेज सरकार के विरुद्ध कोई भी प्रवृत्ति सरकारी अफ़सरों के लिए असह्य थी। अत: लीग की सदस्यता के लिए भेजे गये प्रार्थना-पत्र की सूचना प्राप्त होते ही 'डिप्टी इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने इनका स्थानान्तरण मंगलपुर से सिकंदरा के लिए कर दिया'।[2] इस समाचार से वाजपेयी जी अत्यंत व्यथित हुए, तथापि सिकंदरा प्राइमरी स्कूल में तीन महीने तक अध्यापन - कार्य करके उन्होंने अपना कर्तव्य पूर्ण किया।

उन दिनों स्व0 गणेशशंकर जी विद्यार्थी राजनीतिक क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे, अत: वाजपेयी जी ने उन्हें अपनी कठिनाइयों का, जो उनके देश-सेवा के पथ में रोड़े

1- ' भूदान ' में उनका नामोल्लेख पृ0 24 पर है तथा पृ0 25-26 पर उनके चरित्र, स्वभाव तथा साहित्यिक रुचि का लेखक ने विवेचन किया है।

2- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व, डा0 बैजनाथ गुप्त, पृ0 2.

का काम करती थीं, एक विस्तृत पत्र लिखकर परिचय दिया । विद्यार्थी जी ने शीघ्र ही अपने मित्र 'विकसित जी' से कहा कि वे वाजपेयी जी को कानपुर बुला लें ; किंतु एक और व्यवधान उपस्थित हो गया । उस समय के डिप्टी इन्स्पेक्टर के पास वाजपेयी जी ने त्यागपत्र भेज तो दिया, परंतु वह स्वीकृत न हुआ । अंत में "वाजपेयी जी स्वयं उनके पास गये और कहा कि ' न तो आप ही देश के लिए कुछ कर रहे हैं और न मुझे ही करने दे रहे हैं, जब कि देश के निमित्त कुछ न कुछ करना प्रत्येक देशवासी का परम पावन कर्तव्य है ।'"[1] इस कथन से उनकी निर्भीकता का परिचय मिलता है । निर्भीकमना वाजपेयी जी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे और अंत में डिप्टी इन्स्पेक्टर ने भी उनकी निर्भीकता की प्रशंसा की और उनका त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया ।

अपने मार्ग में अब कोई भी व्यवधान न रहने से ' विकसित जी' का आदेश पाते ही वाजपेयी जी कानपुर में पहुँच गये । वहाँ जाने के पश्चात् विद्यार्थी जी के माध्यम से उनकी नियुक्ति होमरूल-लीग के पुस्तकालय में ग्रंथपाल के रूप में हो गई । पूरे दिन में कुल मिलाकर उन्हें केवल छः घण्टे कार्य करना पड़ता था । इस सेवा के लिए उन्हें बारह रुपये प्रतिमास मिलते थे । नौकरी करते हुए भी इतर वाचन के लिए उन्हें पर्याप्त अवकाश रहता था । 'लीग' के पुस्तकालय में उपलब्ध हिन्दी - साहित्य की सभी पुस्तकें उन्होंने पढ़ लीं । साहित्य के प्रति उनके हृदय में जिस आकर्षण ने जन्म लिया था, उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई । अब उनकी साहित्य-साधना निरंतर चलती रही ।

होमरूल-लीग के कार्यालय में लीग की बैठकें होती थीं तथा जिला स्तर पर सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया जाता था । उन सभाओं में प्रादेशिक नेता तथा राष्ट्रीय विचार-धारा के प्रवक्ता पधारते थे । इन सभाओं की संपूर्ण व्यवस्था का उत्तरदायित्व वाजपेयी जी के सिर पर था । अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए वे अपनी ओर से अधिकाधिक योगदान देते थे । सभाओं की सुन्दर व्यवस्था करके उन्होंने अपनी कार्यक्षमता एवं कुशलता का परिचय दिया ; किंतु यह क्रम दीर्घकालपर्यन्त न चल सका और केवल चार वर्ष पुस्तकालय की सेवा करने का इन्हें अवसर मिला । अचानक लीग के बंद हो जाने से पुस्तकालय भी तत्काल बंद हो गया और वाजपेयी जी की लगी नौकरी चली गई ।

परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यंत विषम थी और कुटुम्ब के निर्वाह की समस्या

1- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व, डा० बैजनाथ गुप्त, पृ० 3.

: 15 :

सामने मुँह बाये खड़ी थी । ऐसे दुर्दिनों में उनकी धर्मपत्नी ने, जिनके लिए यह देखना नया था,[1] सभी प्रकार से उनकी सहायता करके उनका हौसला बढ़ाया । अपने सभी जेवर उन्होंने शीघ्र वाजपेयी जी को दे दिये । इस घटना से वाजपेयी जी के हृदय को असह्य व्यथा हुई ; किंतु विषम परिस्थिति ने उन्हें पत्नी के गहने बेचने के लिए विवश कर दिया । दो मित्रों की साझेदारी में उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं की दुकान खोली ; किंतु साहित्य-साधना के लिए जिसका जन्म हुआ हो, वह दुकानदार कैसे बन सकता था ? सरस्वती को भी जैसे यह स्वीकार न था कि उसका पुत्र लक्ष्मी का पुजारी बन जाय । दुर्दैव से छ: महीने के पश्चात् दुकान में चोरी हो गई । अत: विवश होकर उन्हें व्यापार बन्द कर देना पड़ा और पुन: एक बार प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें घेर लिया ।

परिवार-पालन के हेतु कुछ न कुछ कार्य करना उनके लिए अनिवार्य था । नौकरी ढूँढने के लिए वे दर-दर भटकते रहे । यह बात सन् 1920 ई0 की है । उन्होंने उस वर्ष बंगाल बैंक में काम किया, पर उनका कार्य अधिक समय तक न चल सका । तत्पश्चात् उन्होंने कभी कम्पाउण्डरी, तो कभी प्रूफ-रीडरी की; किंतु कहीं भी दीर्घकाल तक वे टिक नहीं सके । उन दिनों उन्होंने जो कार्य किये, उनमें से उन्हें प्रूफ-रीडरी का कार्य रास आ गया । इस कार्य की रुचि ने उनके जीवन की दिशा तथा लक्ष्य को बदल दिया । उन्हें लगा कि यही एक ऐसा माध्यम है, जिससे वे साहित्य के सतत संपर्क में रह सकते हैं । पुन: एक बार अल्प समय के लिए उन पर घिरे कठिनाइयों के श्याम मेघ दूर हो गये । उन दिनों खन्ना प्रेस, कानपुर से 'संसार' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ था । वाजपेयी जी ने उदयनारायण वाजपेयी नामक सज्जन से संपर्क स्थापित किया, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें 'संसार' में काम

1- अपनी ससुराल के वैभव का वर्णन करते हुए वाजपेयी जी लिखते हैं - उनके (ताऊ के) ससुर का एक जमाना था । उनकी (अर्थात् वाजपेयी जी की पत्नी के पितामह की) एक नील की कोठी चलती थी । रुई, घी, गल्ले का व्यवसाय होता था, जिसमें लाखों रुपये का लाभ होता था । उनके यहाँ पचास-पचास गायें और भैंसे रहती थीं----मेरी पत्नी को तो आपने देखा ही है । उन्होंने अपने बचपन में वे दिन देखे हैं, जब रुपया प्यौर चाँदी का चलता रहा था । सप्तम एडवर्ड वाला पुराना सिक्का उस समय चलता था । रुपयों की गणना नहीं की जाती थी । वे तौल-तौल कर डहरों (मिट्टी का बना सबसे बड़ा और लम्बा बर्तन) में भरे जाते थे । ये डहरे फर्श के नीचे जमीन में गड़े रहा करते थे । आभूषण सागौन की बनी इतनी बड़ी संदूक में रखे जाते थे जिसमें दस आदमी बैठाले जा सकते थे ।

- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से ।

मिल गया । प्रारंभ में वे उस पत्रिका के प्रूफ-रीडर के रूप में कार्य करने लगे, कालांतर में वे लिपिक बना दिये गये । 'संसार' में आने के पश्चात् उन्होंने केवल तीन दिन में प्रूफ-रीडिंग का कार्य सीख लिया और एक ही महीने में पत्रिका के लिए संपादकीय टिप्पणी-लेखन प्रारंभ कर दिया । प्रूफरीडरी का पूर्व अनुभव 'संसार' में आने पर उन्हें काम आया । कार्य करने की गति इतनी तेज़ थी कि एक घण्टे में पंद्रह पत्र वे सरलतापूर्वक लिख सकते थे । अत: ग्राहकों को पत्रिका भिजवाने तथा रजिस्टर आदि रखने का कार्यभार भी उन्हें सौंपा गया । अपने सतत अध्यवसाय से वाजपेयी जी ने 'संसार' के लिए अपने को अनिवार्य बना लिया । 'संसार' के दोनों प्रधान संपादक-स्व0 नारायणप्रसाद अरोड़ा तथा पं0 उदयनारायण वाजपेयी -भी वाजपेयी जी की प्रतिभा से अत्यंत प्रभावित हुए और शीघ्र ही उनकी नियुक्ति अपने सहायक-संपादक के रूप में कर दी । दो वर्ष पश्चात् वाजपेयी जी उस पत्रिका के प्रधान संपादक बन गये । इस संबंध में 'संसार ' के भूतपूर्व संपादक का संस्मरण द्रष्टव्य है -' जब पं0 उदयनारायण जी ने पत्र से किनाराकशी कर ली और इन पंक्तियों का लेखक जेल चला गया, तब सद्गुरुशरण जी अवस्थी 'संसार ' के संपादक बनाये गये ; किंतु कालेज में पढ़ना जारी रखने के कारण उन्होंने भी 'संसार ' का भार नहीं संभाला, अत: 'संसार' के संपादन आदि का कार्य भी पं0 भगवतीप्रसाद के सिर मढ़ा गया ।' [1]

साहित्य-सेवा के इस सुयोग से उनकी साहित्यिक प्रतिभा, जो संकट काल में सुषुप्तावस्था में थी, उद्बुद्ध हो उठी । अब उन्होंने नियमितरूप से कविता तथा लेख लिखना प्रारंभ कर दिया । 'संसार ' का संपादन-कार्य उन्होंने बड़े मनोयोग से किया, तथापि यह पत्रिका अधिक दिनों तक न चल सकी । अर्थाभाव के कारण उसका प्रकाशन बंद हो गया । इस प्रकार वाजपेयी जी ने 'संसार' का उदय एवं अस्त दोनों देखा ।

'संसार' के संपादन -काल में उन्होंने पर्याप्त साहित्यिक प्रसिद्धि अर्जित कर ली थी । उनके लेख लखनऊ से प्रकाशित 'माधुरी' नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुके थे । उन लेखों से उस पत्रिका के संपादक श्री रूपनारायण पाण्डेय अत्यंत प्रभावित हुए थे । हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कथाकार पं0 विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' के माध्यम से वाजपेयी जी का परिचय पाण्डेय जी तथा दुलारेलाल भार्गव से हुआ और सन् 1923 ई0 में उनकी नियुक्ति 'माधुरी' के सह-संपादक के रूप में हो गई । उन्होंने पुन: एक बार निष्ठापूर्वक अपना कार्य

1- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा का संस्मरण, पृ0 208.

प्रारंभ किया; किंतु इससे पूर्व कि वे अधिक सेवाएँ `माधुरी` को दें, उन्हें सन् 1924 ई0 में लखनऊ छोड़ देना पड़ा। उनकी माता के दिवंगता हो जाने से व्यथित हृदय वे मंगलपुर चले गये। इसी तरह पुन: एक बार सन् 1930 ई0 में उन्हें संग्रहणी से बीमार पिता की गंभीर स्थिति के समाचार प्राप्त होते ही इलाहाबाद से जाना पड़ा था। उस समय वे `शिशु - कार्यालय` में लेखन-संपादन का कार्य कर रहे थे। पत्नी की बड़ी बहन की चिट्ठी प्राप्त होते ही नौकरी छोड़कर वे अपने गाँव गये, तब पिता जी ने उनके साथ इलाहाबाद में रहने की इच्छा प्रकट की ; किंतु जिस दिन अपने रुग्ण पिता को देखने के लिए वाजपेयी जी इलाहाबाद से गये थे, उसी रात को लगभग दस बजे उनके पिता जी ने अंतिम साँस ली। वाजपेयी जी के जीवन का वात्सल्य का आधार टूट गया। अब रहा केवल एकाकी व्यक्तित्व और संघर्षों से भरा जीवन।

संपर्क :

अपने लेखन-काल के प्रारंभ से आज तक वे अनेक व्यक्तियों के संपर्क में आये हैं, उनमें प्रमुखरूप से उनका संपर्क साहित्यकारों के साथ ही हुआ है। सन् 1916 ई0 में आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी तथा हरिभाऊ उपाध्याय से वाजपेयी जी की प्रथम भेंट कानपुर में हुई। सन् 1924 ई0 में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ने वाजपेयी जी को सहायक मंत्री के रूप में नियुक्त किया। इस पद पर वे चार वर्ष रहे। इस बीच उनका परिचय हिन्दी के अनेक साहित्यकारों से हुआ। जिन साहित्यिकों से उनका संपर्क स्थापित हुआ उनमें प्रमुख थे - अवध-निवासी लाला सीताराम, कविवर पं0 श्रीधर पाठक,, पं0 रामनरेश त्रिपाठी और ठाकुर गोपालशरण सिंह। `रत्नाकर जी` उस समय अयोध्या की रानी के यहाँ मैनेजर थे, परंतु जब कभी वे इलाहाबाद जाते थे, तब निश्चितरूप से उनके यहाँ कवि-गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था। उन गोष्ठियों में वाजपेयी जी भी सम्मिलित होते थे। रत्नाकर जी वाजपेयी जी के प्रशंसक थे। इनके अतिरिक्त अन्य जिन साहित्य-रसिकों के संपर्क में वे आये उनमें डा0 रामप्रसाद त्रिपाठी मुख्य थे। वे उस समय प्रयाग में इतिहास के प्रोफेसर थे, तथापि हिन्दी-साहित्य में उन्हें अत्यंत रुचि थी। हिन्दी-साहित्य के अनन्य प्रेमी तथा गंभीर निबंधकार होने के साथ-साथ वे ब्रजभाषा के भी सफल कवि थे। `उस समय कविवर सुमित्रानंदन पंत का कवि पनप रहा था और श्रीमती महादेवी वर्मा, कविवर हरवंशराय `बच्चन`, पं0 रामेश्वर शुक्ल `अंचल` और नरेन्द्र शर्मा का कवि जन्म ले रहा था।`[1] आज जो पर्याप्त प्रसिद्धि

1- वाजपेयी जी के दिनांक 16-11-69 के पत्र से।

अर्जित कर चुके हैं , उन साहित्यकारों की प्रारंभिक रचनाएं हिंदी की स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने में वाजपेयी जी ने यथाशक्ति सहायता की थी । आज के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की कविता 'सरस्वती' में प्रकाशित कराने का श्रेय वाजपेयी जी को ही है । उनका यह विशेष गुण है कि नयी पौध को वे कभी हतोत्साह नहीं करते ।' वे नवोदितों को सदैव साहित्य-सृजन की प्रेरणा देते रहे हैं । उनकी कृतियाँ पढ़कर प्रशंसा और कभी-कभी तो अति प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं -"जब मैंने प्रथम कहानी लिखी थी, तब मैं भी इतनी अच्छी नहीं लिख पाया था ।"[1] इस गुण के कारण वे अनेक नवोदित साहित्यकारों के संपर्क में आये । साक्षात्कार के समय अपने अतीत का एक संस्मरण याद करते हुए डा0 भगवत शरण उपाध्याय ने बतलाया था -" सन् 1929 ई0 में मैं बी0 ए0 का छात्र था । तब मैंने एक कहानी लिखी थी । इस समय मुझे वह कहानी तथा उसका नाम याद नहीं । मैंने जब वह कहानी उन्हें दिखाई, तो उन्होंने चिल्लाकर कहा था, 'यह तो प्रेमचंद से भी आगे बढ़ गया ।"[2] उनके इस गुण के कारण अनेक नये लेखकों ने उनसे संपर्क स्थापित किया और यह सिलसिला अद्यपर्यन्त यथावत् चलता रहा है ।

इलाहाबाद के अन्य साथियों में ठाकुर श्रीनाथ सिंह का नामोल्लेख भी किया जा सकता है । इनके अतिरिक्त जिन साहित्यकारों के संपर्क में अधिक रहने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ वे हैं- समीक्षक और कवि पं0 गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश', महा प्राण 'निराला' , श्री इलाचंद्र जोशी, गंगाप्रसाद पाण्डेय, राय बहादुर , पं0 श्री नारायण चतुर्वेदी, डा0 रामप्रसाद त्रिपाठी, डा0 अमरनाथ झा, पं0 कृष्णाकान्त मालवीय, पं0 पद्मसिंह शर्मा, डा0 उदयनारायण तिवारी, हरिऔध जी, तथा सुप्रसिद्ध नाटककार और कवि डा0 रामकुमार वर्मा । इन सभी साहित्यकारों से उन्हें बड़ा प्रोत्साहन व प्रेरणा मिली । डा0 रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' उनके मित्रों में से रहे हैं । हिन्दी-साहित्य के प्रखर आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रख्यात साहित्यकार प्रसाद जी तथा विनोद शंकर व्यास से भी उनकी भेंट हुई । अपने उपन्यास 'परख' के प्रकाशन के पश्चात् जैनेन्द्र जी ने प्रस्तुत उपन्यास के विषय में वाजपेयी जी की प्रतिक्रिया जानने के हेतु स्वयं उनसे संपर्क स्थापित किया । हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वृंदावन में होनेवाले अधिवेशन में वाजपेयी जी का साक्षात्कार किशोरीलाल गोस्वामी से हुआ । श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के आलोचक रहे, तथापि उनके संपर्क में आकर

1- डा0 रामविलास शर्मा से भेंटवार्ता , दिनांक 17-11-68

2- डा0 भगवतशरण उपाध्याय से भेंट-वार्ता, दिनांक 23-10-71.

वे जो कुछ सीख सके, उससे उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान मिला । हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सहायक मंत्री पद को त्याग देने के पश्चात् सन् 1929 ई0 में पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी से मुजफ्फरपुर (बिहार) वाले सम्मेलन के वार्षिकोत्सव में उनकी भेंट हुई । तत्पश्चात् दिल्ली-यात्रा में आचार्य चतुरसेन शास्त्री से भी उनका संपर्क हुआ । सन् 1945 ई0 में बम्बई में वाजपेयी जी डा0 राजेश्वर गुरु के संपर्क में आये । वाजपेयी जी के साहित्यकार होने के कारण ही यहाँ उनके साहित्यिक संपर्क को प्राधान्य दिया गया है । साहित्य-क्षेत्र में रहने के कारण आज भी वे अनेक साहित्यकारों के संपर्क में आते ही रहते हैं ।

कार्य-क्षेत्र :

अपने काव्य-गुरु पं0 बाँके बिहारी चतुर्वेदी [1] की सहायता से वाजपेयी जी ने काव्यशास्त्रों का सम्यक् अध्ययन कर लिया । उनकी ही सहायता से वाजपेयी जी ने अलंकार एवं पिंगलशास्त्र का भी गहन अनुशीलन किया । आचार्य भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' तथा श्री भानु कवि रचित 'छंद: प्रभाकर' तथा 'काव्य-प्रभाकर' का अध्ययन वाजपेयी जी ने काव्य-क्षेत्र में आते ही कर लिया । फलस्वरूप उन्होंने अनेक दोहों, सवैयों तथा कवित्तों की रचना की । उन दिनों समस्या पूर्ति करने में उन्हें विशेष रुचि थी । केवल चौदह वर्ष की आयु से उन्होंने लिखना प्रारंभ कर दिया था ; किन्तु अपरिपक्वता के कारण उनकी प्रारंभिक रचनाएँ पत्रिकाओं में स्थान प्राप्त नहीं कर सकी थीं । कालान्तर में उन्होंने जो कविता लिखी, वह एक समस्या पूर्ति थी । समस्या थी '------रह जायगो'। इसकी पूर्ति उन्होंने सोरठा में इस प्रकार की थी -

" मित्रो जग बाजार, सौदा है ह्याँ यश-अयश ।
पहले लो उरधार, नाम शेष रह जायगो ।।"

प्रारंभ में वाजपेयी जी भगवतीप्रसाद शर्मा के नाम से लिखते थे, अत: प्रस्तुत सोरठा सन् 1915 ई0 में 'रसिक मित्र' में इसी नाम से प्रकाशित हुआ था । तत्पश्चात् हिंदी के सभी

1- उनके संबंध में वाजपेयी जी लिखते हैं -"चतुर्वेदी जी में युवकों के चरित्र-निर्माण की उदात्त भावना थी । उनकी संगति का लाभ जो लोग उठा सके, वे काँच के टुकड़े से हीरा बन गये । स्वभाव के वे बड़े ही शीलवान्, विद्या-व्यसनी तथा साहित्य रसिक थे । यों तो नवों रसों पर उनका सामान्य अधिकार था, पर श्रृंगाररस के वे परम उपासक और कुशल कवि थे । 'मिश्रबन्धु-विनोद' में उनका उल्लेख पाया जाता है ।

-भूदान, पृ0 26.

स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगीं । अपनी प्रथम कविता के प्रकाशन के संबंध में वे लिखते हैं -"सन् 1917 ई0 के जून के अंत में गया से निकलनेवाली 'लक्ष्मी' नामक मासिक पत्रिका में, जिसके संपादक लाला भगवानदीन थे, मेरी पहली कविता निकली ।---- सन् 42 में ज्ञानलोक, दारागंज, आगरा से 'ओस की बूँद' नामक मेरा एक काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हुआ ।"[1] उन दिनों वे कविताएँ 'व्यक्ति-विशेष' उपनाम से लिखते थे । और इसी उपनाम से उनकी कविताएँ उस समय के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं -'मर्यादा' (इलाहाबाद), 'ललिता' (मेरठ), 'प्रताप' (कानपुर) और 'उत्साह' (उरई) आदि- में प्रकाशित हुई थीं । उनका प्रथम लेख 'परिवर्तन' शीर्षक से 'संसार' में, ~~प्रथ~~ जिसके संपादक उदयनारायण वाजपेयी थे, सन् 1919 ई0 में प्रकाशित हुआ था ।

उन दिनों जब वे कानपुर में निवास करते थे, तब एक-एक करके वहाँ के सभी पुस्तकालयों की पुस्तकों का अध्ययन उन्होंने किया । "उस समय तीन वर्षों के भीतर ही उन्होंने उस समय तक प्रकाशित संपूर्ण हिन्दी उपन्यास-साहित्य का (अनूदित और मौलिक) अध्ययन कर डाला था ।"[2] बंगाली और अंग्रेजी प्रयत्न करने पर भी वे पूर्णत: नहीं सीख सके थे, अत: इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त फ्रेन्च, रूसी और जर्मन आदि भाषाओं के उपन्यास-साहित्य के भी उन्हें हिन्दी अनुवाद पढ़ने पड़े ,जिनका प्रभाव उनके कथा-साहित्य पर दृष्टिगोचर होता है। उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने नाटक एवं कविता की पुस्तकों का भी गंभीर अध्ययन किया ।

गद्य -लेखक के रूप में उन्हें ख्याति मिल ही चुकी थी, अब कवि के रूप में भी उन्हें पर्याप्त समादर मिलने लगा । अनेक कवि-सम्मेलनों में उन्होंने कवि के रूप में भाग लिया और अपनी कवित्व शक्ति का परिचय दिया था ।" एक बार प्रयाग में हिन्दू-बोर्डिंग में एक कवि-सम्मेलन हुआ । उसमें वाजपेयी जी ने 'पगली' कविता सुनाई । उस समय उस कविता की बड़ी धूम रही ; किंतु कवि-सम्मेलनों में भाग लेना उनकी रुचि के अनुकूल न पड़ने के कारण हिंदी-~~प~~ जगत वाजपेयी जी की अधिक कविताएँ सुन न सका ।"[3] इसके अतिरिक्त अन्य भी एक कारण था । कविता-लेखन से उन्हें कुछ विशेष अर्थोपार्जन नहीं होता था, अत: विवश होकर उन्हें कविता-लेखन छोड़ देना पड़ा । यद्यपि वे आज भी यदा-कदा कविता लिख लेते हैं । उनके उपन्यासों में [4] भी उनका कवि झाँकता प्रतीत होता है । द्वितीय अध्याय में साहित्यिक व्यक्तित्व के अंतर्गत उनके कविरूप की चर्चा विस्तारपूर्वक की जायगी ।

1- ज्ञानोदय, दिसम्बर '68

2- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व, डा0 बैजनाथ गुप्त, पृ0 4

3- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी: शिल्प और चिंतन, डा0 ललित शुक्ल, पृ0 6

4- दे 'चलते-चलते', पृ0 291; 'सपना बिक गया', पृ0327-331, 'गोमती के तट पर', पृ0 191-193, 255 ।

कविता - लेखन छोड़कर उन्होंने अब गद्य लिखना आरंभ किया । इससे उनके साहित्यकार के जीवन में एक नया मोड़ आया । गद्य में अब तक वे केवल लेख लिखते थे, अब कहानी लिखना भी प्रारंभ किया । इस प्रकार के गद्य-लेखन की प्रेरणा उन्हें पं0 द्वारिका प्रसाद मिश्र से मिली । उनसे उनका पूर्व परिचय था । सन् 1918 ई0 में वाजपेयी जी लीग के पुस्तकालय के ग्रंथपाल थे, तब मिश्र जी कानपुर के क्राइस्ट चर्च कालेज में अध्ययन कर रहे थे और नियमितरूप से होमरूल-लीग के वाचनालय में जाते थे । वह पूर्व परिचय काम आया । वाजपेयी जी ने कहानियाँ लिखना और प्रकाशनार्थ भेजना प्रारंभ कर दिया । अपनी प्रथम कहानी के संबंध में वे लिखते हैं -" श्री शारदा' नामक एक पत्र जबलपुर से निकलता था । इसके संपादक पं0 द्वारिका प्रसाद मिश्र थे । सन् '22 में 'यमुना' नामक मेरी पहली कहानी इसमें प्रकाशित हुई।"[1] इसके पारिश्रमिकरूप में उन्हें तीन रुपये प्राप्त हुए । इससे उन्हें प्रोत्साहन मिला । उनकी दूसरी कहानी 'अनधिकार चेष्टा' सन् 1923 ई0 में 'मर्यादा' में, जिसके संपादक थे स्व0 प्रेमचंद जी, प्रकाशित हुई । स्वभावत: पारिश्रमिक के लिए पत्र लिखने पर प्रेमचंद जी ने उत्तर दिया, "यह आपकी अनधिकार-चेष्टा है; किन्तु फिर भी पाँच रुपये भेजे जा रहे हैं ।"[2] इस प्रकार उनकी कहानियाँ प्रकाशित होती रहीं, पारिश्रमिक भी मिलता रहा; किंतु अब तक कहानीकार के रूप में उन्हें पर्याप्त ख्याति और लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई थी । जिस कहानी ने उन्हें हिंदी कहानी-साहित्य में अमरत्व प्रदान किया, वह थी 'मिठाईवाला' । 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ' के लिए वह लिखी गई थी; किंतु बाद में जब उसमें कहानी-विभाग ही न रखा गया, तो वह प्रकाशित हुई सन् 1934 ई0 में 'हंस' के 'द्विवेदी विशेषांक' में ।

कहानी - लेखन के पश्चात् भी उनकी आर्थिक समस्या यथावत् बनी रही । अत: सरलतापूर्वक जीवन-निर्वाह के लिए उन्होंने कहानियों के साथ-साथ उपन्यास-लेखन भी प्रारंभ कर दिया । उनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमपथ' सन् 1926 ई0 में प्रकाशित हुआ । उसकी भूमिका लिखकर प्रेमचंद जी ने उन्हें प्रोत्साहित किया तथा और भी उत्कृष्ट उपन्यासों की रचना के लिए प्रेरित किया । तत्पश्चात् सन् 1928 ई0 में दो उपन्यास-'मीठी चुटकी'[3] तथा 'अनाथ - पत्नी'- और प्रकाशित हुए । सन् 1929 ई0 में उनके प्रथम कहानी-संग्रह 'मधुपर्क' और सन् 1931 ई0 में ~~उनके प्रथम~~ द्वितीय कहानी-संग्रह 'दीपमालिका' का प्रकाशन हुआ । अब उनका लेखन-कार्य

1- ज्ञानोदय, दिसम्बर '68

2- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनांक 27-10-1963, क्षेमचंद्र 'सुमन' जी के लेख से उद्धृत ।

3- यह उपन्यास उन्होंने शंभुदयाल सक्सेना तथा विजय वर्मा के साथ लिखा है ।

नियमितरूप से चलता रहा । परिणामस्वरूप उनके उपन्यास तथा कहानी-संग्रह निरंतर प्रकाश में आते रहे, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ । अभी तक उपन्यासकार के रूप में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त नहीं हुई थी । उपन्यासकार के रूप में उन्हें सन् 1936 ई0 में प्रकाशित 'पतिता की साधना' तथा 'पिपासा' नामक उपन्यासों से विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई । सन् 1939 ई0 में उनका एक और कहानी-संग्रह 'हिलोर' प्रकाशित हुआ । उसकी भूमिका में डा0 अमरनाथ झा, तत्कालीन वाइस चान्सलर, प्रयाग विश्वविद्यालय, ने लिखा, 'कवि तो बहुत हैं, उपन्यास लिखनेवाले भी कम नहीं, इधर नाटककार भी कई अच्छे ग्रंथ लिख रहे हैं, परंतु अच्छी कहानियाँ लिखनेवाले चार-पाँच से अधिक नहीं । इन चार-पाँच में वाजपेयी जी का भी स्थान है ।'[1]

पहले अपनी छोटी बहन के विवाह तथा अपने अग्रज के निधन के पश्चात् जिन विकट परिस्थितियों का सामना उन्हें करना पड़ा था, ऐसी ही विषम परिस्थिति अपनी बड़ी पुत्री के विवाह की समस्या सुलझाते समय पुन: एक बार उनके समक्ष उपस्थित हुई । अत: लगभग चार वर्ष उन्हें बम्बई के चलचित्र-उद्योग में व्यतीत करने पड़े । इस सम्बंध में प्रस्तुत अध्याय में ही आगे विस्तृत चर्चा की जायगी ।

दिसम्बर, '49 में हैदराबाद में 'हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' का आयोजन किया गया था । बम्बई से लौटने के पश्चात् उसमें भाग लेने के लिए वाजपेयी जी गये, तो वहाँ उनकी भेंट श्री विजयेन्द्र स्नातक से हुई । उन्हीं के माध्यम से गौतम बुक डिपो के स्वामी से वाजपेयी जी का परिचय हुआ और उस संस्था से उनके 'गुप्तधन' नामक उपन्यास के प्रकाशन का अनुबंध हुआ । इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही पाठकों ने उसका हार्दिक स्वागत किया । यह उपन्यास उनके लिए वस्तुत: 'गुप्तधन' सिद्ध हुआ । वाजपेयी जी के कथनानुसार केवल इस उपन्यास से उन्हें दस हज़ार रुपये की आय हुई ।

साहित्य - सम्मेलन समाप्त होते ही वे हैदराबाद से कानपुर लौट आये और अपनी कर्मभूमि कानपुर में आकर दत्तचित्त वे साहित्य-सृजन करने लगे । अब नियमितरूप से वर्ष में उनके औसत दो उपन्यास प्रकाशित होने लगे । आज तक उन्होंने कुल मिलाकर लगभग पैंतालीस उपन्यासों तथा तीन सौ कहानियों की रचना की है ।

सन् 1944 ई0 तक वाजपेयी जी हिंदी कथा-साहित्य में पर्याप्त प्रसिद्ध एवं प्रिय हो

1- हिलोर, प्राक्कथन, पृ0 5

गये थे । कथाकार के रूप में उन्होंने अपना स्थान निश्चित कर लिया था । अब परिवार - निर्वाह की चिन्ता से वे मुक्त थे ; किंतु आर्थिक स्थिति इतनी अधिक अच्छी नहीं थी कि विवाह जैसे प्रसंग को वे सरलतापूर्वक निपटा सकें । अत: अपनी बड़ी लड़की के विवाह के लिए अधिक धन जुटाने के लिए जनवरी, सन् 1945 ई0 में उन्हें बम्बई के फिल्म-क्षेत्र में जाना पड़ा । उन्हें फिल्म-क्षेत्र में लाने का श्रेय श्री अमृतलाल नागर को था । 'नागर जी सदा हिन्दी लेखकों को फिल्मों में लाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे ।'[1] [illegible] बम्बई में आने के पश्चात् 'विष्णु सिनेटोन' के लिए कथा और गीत लिखने का कार्य उन्हें मिला । उन दिनों 'भक्त प्रह्लाद' फिल्म का निर्माण हो रहा था । उस फिल्म के निर्माता-निर्देशक श्री नटवर श्याम तथा धीरूभाई देसाई थे । वाजपेयी जी इस क्षेत्र में सन् 1948 ई0 तक रहे । चलचित्र-जगत में रहकर उन्होंने संवाद-लेखन का विशेष ज्ञान प्राप्त किया । अपने इस ज्ञान का उपयोग सन् 1950 ई0 के पश्चात् लिखे गये अपने उपन्यासों में उन्होंने कुशलतापूर्वक किया ।

उनसे जब पूछा गया कि आपने चलचित्र-उद्योग को कौन-सी सेवाएँ दीं, तब आँखें मूँदकर अतीत को टटोलते हुए स्मित की सहज मुद्रा में उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, 'फिल्म 'आहुति' उर्फ़ 'अनोखी कुरबानी' तथा 'जनता' में मैंने संवाद लिखे । 'भक्त प्रह्लाद' तथा 'सूरत' के लिए गीत लिखे । 'जीवन कला चित्र' कम्पनी के 'हुआ सबेरा' में कहानी तथा गीत लिखे । 'मज़दूर'[2] में एक्टिंग का भी मौक़ा मिला, तो उस ज़माने की प्रख्यात हिरोईन इन्दुमती के पिता का रोल अदा किया ।'[3] हिंदी चलचित्र-उद्योग को अधिक सेवाएँ दे सकने की सामर्थ्य उनमें थी ; किन्तु जिन कारणों से उन्हें बम्बई छोड़नी पड़ी, उनमें से प्रमुख कारण इस प्रकार थे -

भारत-विभाजन के कारण बम्बई के कई स्टुडिओ बंद हो गये । परिणामस्वरूप नागर जी, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि वाजपेयी जी के लेखक मित्र बम्बई छोड़कर चले गये, तब अकेले वाजपेयी जी का मन भी वहाँ न लगा, अत: वे भी कानपुर लौट आये । यह चलचित्र-जगत दूर से तो बहुत आकर्षक लगता है ; किन्तु निकट जाने से बड़ा ही घृणास्पद

1- श्री ब्रजेन्द्र गौड़ के दिनांक 19-4-70 के पत्र से ।

2- 'मैंने उन्हें 'मज़दूर' में एक भूमिका आफर की । उन्हें संकोच हुआ, तो मैंने स्वयं उनके साथ सेट पर उतरना स्वीकार कर लिया । तब वे मान गये ।----'मज़दूर' फिल्म मेरी और उनकी भूमिका के साथ ही शुरू होता है ।' श्री उपेन्द्रनाथ अश्क के दिनांक 1-8-69 के पत्र से ।

3- श्री वाजपेयी जी के सौजन्य से ।

दिखाई देता है । अद्यपर्यन्त कोई भी साहित्यकार स्वाभिमान के साथ इस क्षेत्र में जमकर टिक नहीं पाया है ; क्योंकि वहाँ निरंतर चलते रहने वाले षड्यंत्र, पारस्परिक द्वेष तथा निर्माता-निर्देशकों के आदेशानुसार कार्य करना किसी भी स्वाभिमानी तथा सरल स्वभाव के साहित्यकार के लिए असह्य हो जाता है । वाजपेयी जी ने इस क्षेत्र का त्याग किया, इसमें उनके स्वाभिमानी स्वभाव का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । इस सम्बंध में उनके एक मित्र लिखते हैं -"भगवतीबाबू फिल्म में उसी तरह अपने आपको एडजस्ट नहीं कर सके, जिस तरह श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री नागर जी आदि साहित्यकार ; क्योंकि यहाँ स्वाभिमान और तर्क के लिए कम स्थान रहता है । ---- इसके अतिरिक्त 'विष्णु सिनेटोन' बंद भी हो गई थी और यहाँ अजब तरीका है, व्यक्ति के गुण कम देखे जाते हैं । उन पर स्टाम्प ज्यादा लगायी जाती है । जो धार्मिक चित्रों से सम्बंधित हों, उसे सामाजिक चित्रों वाले कम बुलाते हैं । जिन परिस्थितियों में भगवतीबाबू यहाँ से गये, कोई भी साहित्यकार जाता । तब यहाँ क्राइसिस भी थी ।"[1] श्री गौड़ जी की बात ध्यान देने योग्य प्रतीत होती है । वाजपेयी जी जिस संस्था में कार्य करते थे, वह प्रमुखत: धार्मिक चित्रों का निर्माण करती थी, अत: सामाजिक चित्रों का निर्माण करने वाली संस्थाओं ने वाजपेयी जी की ओर कतई ध्यान नहीं दिया । इसके अतिरिक्त उन्हें लगा कि चरित्र-सम्बंधी अपनी मान्यताओं का उस क्षेत्र में कोई मूल्य नहीं है, तब विवश होकर उन्हें इस क्षेत्र का सदा के लिए त्याग करना पड़ा ।

जब उनसे प्रश्न किया गया कि फिल्मी-दुनियाँ में आपको कैसे-कैसे अनुभव हुए ? वहाँ रहकर आपने क्या महसूस किया ? फिल्मी-दुनियाँ में रहकर भी कोई साहित्यकार अपने को तटस्थ रख सकता है क्या ?" तब उत्तर देते हुए उन्होंने कहा-"दु:ख और दैन्य, परवशता, विवशता से जीर्ण-जर्जर व्यक्तियों और विशेष रूप से युवतियों के जीवन को निकट से देखने का मुझे अवसर मिला था । वहाँ काट-कपट, छल-छंद, धूर्तता, मक्कारी और बेईमानी, कोरी बनावट और दंभ, सौंदर्य-बोध के नाम पर चरित्र-स्खलन, कला की पूजा और अर्चना के नाम पर लैंगिक भ्रष्टाचार, व्यवसाय के नाम पर पतनोन्मुख आचार और विचार देखने का मुझे पूरा अवसर मिला । मनुष्य के वास्तविक रूप का बहुत-कुछ ज्ञान मुझे उन चार-पाँच वर्षों में जैसा हुआ, उसे मैं कभी भूल नहीं सकूँगा ।

फिल्मी-दुनियाँ में रहकर कोई साहित्यकार अपने को तटस्थ रख सकता है या नहीं, इसका एक उदाहरण मैं स्वयं हूँ । जब मैंने देखा कि चरित्र-सम्बंधी मेरी जो मान्यताएँ हैं,

----

1- श्री ब्रजेन्द्र गौड़ के दिनांक 19-4-70 के पत्र से ।

उनका निर्वाह मैं यहाँ रहकर नहीं कर सकता , तब मैंने उस जीवन को छोड़ दिया । काजल की कोठरी में जाकर भी कोई व्यक्ति कालिख से बच सकता है, ऐसा मैं सोच भी नहीं सकता'।[1]

लगभग चार वर्ष इस क्षेत्र में व्यतीत करने से चलचित्र-उद्योग और वहाँ के जीवन के संबंध में उनके पूर्ववर्ती विचारों में परिवर्तन आ गया । इस जीवन के विषय में उनके विचार बड़े क्रांतिकारी हैं । उनकी मान्यता है - "ऐसे जीवन का क्या, जिसमें कोई सगा नहीं होता ; क्योंकि वहाँ का माई-बाप होता है 'पैसा' । वहाँ बेईमानी का नाम है 'चातुर्य', विश्वास-घात का नाम है 'आगे बढ़ना', 'उन्नति करना'। मैंने वहाँ यह अनुभव किया कि साहित्य में जिसे कहानी कहते हैं, सिनेमा-उद्योग में उसका कोई महत्त्व नहीं है । उछल-कूद, हा-हा, ही-ही, मार-पीट, मर्डर, कोर्ट सीन और अंत में खल-नायक के षड्यंत्र का भंडाफोड़ एवं नायक-नायिका का मिलन ही 'फिल्म स्टोरी' के लिए आवश्यक तथा अनिवार्य है ।"[2]

बम्बई के फिल्म-उद्योग के गहन अध्ययन के पश्चात् उसका यथार्थ चित्रण वाजपेयी जी ने अपने 'चलते-चलते', 'विश्वास का बल' तथा 'टूटा टी सैट' आदि उपन्यासों में विस्तार-पूर्वक किया है । फिल्म-जगत के सम्बंध में वाजपेयी जी के जो विचार उनके उपन्यासों में प्रति-बिम्बित हुए हैं, उनकी एक झलक द्रष्टव्य है - " यहाँ गीत कोई लिखता है और नाम किसी का जाता है । मूल कथा किसी की होती है, लेकिन उसे उड़ाकर, आत्म-परिस्थितियाँ ठूँस-ठाँसकर कथाकार कोई बन जाता है ।--- मुलम्मा को सोना कहकर प्रचारित करना यहाँ की नीति और परम्परा है ।"[3]

अक्टूबर, 1948 ई0 में विभिन्न कटु एवं मधुर अनुभव लेकर वाजपेयी जी इलाहाबाद लौटे । वहाँ से सन् 1950 ई0 में कानपुर चले गये और उसे सदा के लिए अपनी कर्मभूमि के[4] रूप में निर्वाचित किया । वहाँ भी उन्हें संघर्षमय जीवन व्यतीत करना पड़ा । संघर्ष जैसे उनके जीवन का अभिन्नतम अंग बना गया है । वाजपेयी जी के कानपुर-निवास के समय लिखे गये अपने लेख में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने लिखा है - 'आज भी उन का बिस्तरा सदा बँधा रहता है ।

1- ज्ञानोदय, दिसम्बर, 68

2- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 27 अक्टूबर, 63, क्षेमचन्द्र 'सुमन' जी के लेख से ।

3- टूटा टी सैट , पृ0 153.

4- अपनी कर्मभूमि के संबंध में वे लिखते हैं -'कानपुर उत्तर प्रदेश का सर्वश्रेष्ठ व्यापारिक केन्द्र है- अमर शहीद गणेशभाई का क्रीड़ा-क्षेत्र । तीर्थवर, तुम्हें प्रणाम है ।'
- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 109.

आज भी वे महीनों होटलों में रहकर उपन्यास लिखते हैं ।"[1] आज भी उन्हें कभी लखनऊ, तो कभी दिल्ली के प्रकाशकों के यहाँ दौड़-धूप करनी पड़ती है । एक बार जब उनसे प्रश्न किया गया कि इस अवस्था में भी आप निरंतर यात्राएँ क्यों करते रहते हैं और होटलों में ठहरकर वहाँ के भोजन से अपने शरीर के साथ अन्याय क्यों करते हैं, तो सहज हास्य की मुद्रा में उन्होंने उत्तर देते हुए कहा था -" आज के युग में साहित्यकार को आराम कहाँ है, चैन कहाँ है ? आज तो उन्हीं लोगों को आराम है, जो किसी यूनिवर्सिटी में प्राध्यापक हैं और शौक़िया कविता, कहानी, नाटक या आलोचना लिख लेते हैं । सच्चा साहित्यकार तो अब भी संघर्ष कर रहा है ।"[2] वस्तुत: जहाँ एक ओर वे इस तरह अपनी अंतर्वेदना प्रकट करते हैं, वहाँ दूसरी ओर साहित्य-सृजन के लिए जीवन में संघर्ष को अनिवार्य मानते हैं । इतना ही नहीं, उनके उपन्यासों[3] के प्रमुख पुरुष एवं नारी चरित्र भी जीवन-संघर्ष से मुक्त नहीं हैं ।

हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कथाकार पं0 अमृत लाल नागर ने बड़े ही मार्मिक और रोचक ढंग से वाजपेयी जी के जीवन-संग्राम का समग्र आकलन संक्षेप में इन शब्दों में प्रस्तुत किया है -

" आवश्यकतावश घर के गाय-भैंस, बैल-बकरियाँ चराईं, खलिहान में दायँ और उड़नई का काम किया ; पैसों की थैली लादकर गाँव की साहूकारी की; उसके बाद गाँव के प्राइमरी स्कूल की अध्यापकी की, शहर की लाइब्रेरी में पन्द्रह रुपये मासिक पर लाइब्रेरियन रहे ; किताबों का गट्ठर कंधे पर लादकर बेचा, बीवी के गहने बेचकर दुकानदार बने, चोरी हो गई; बैंक की खजांचीगिरी के अपरेंटिस हुए, कम्पाउण्डर बने, प्रूफरीडर बने ; सहकारी संपादक हुए ; फिर संपादक बने । रोटी की लड़ाई में एक साधारण सिपाही बनकर वे आये और आज भारतीय जन समाज के नामी जनरलों में उनका स्थान है ।"[4]

श्री नागर जी ने वाजपेयी जी के संघर्षपूर्ण जीवन का मूल्यांकन संक्षेप में किया है, तथापि उनके कष्टपूर्ण जीवन का पता सरलतापूर्वक चल जाता है । उपर्युक्त विवेचन में हमने देखा है कि वाजपेयी जी के जीवन की परिस्थितियाँ अत्यंत विषम रही हैं । उन परिस्थितियों में भी वे कभी हिम्मत नहीं हारे, उनके जीवन में कभी नैराश्य नहीं आया । साहस और निर्भीकता पूर्वक वे अपने सारस्वत-यज्ञ में सदैव दत्तचित्त रहे । जीवन से जूझते हुए वाजपेयी जी ने जीवन

1- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 27 जनवरी, 63 , क्षेमचंद्र 'सुमन' जी के लेख से ।

2- वही ।

3- दे. कर्मपथ, छोटे साहब आदि उपन्यास ।

4- साहित्यकार पं0 भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सं0 श्री नंददुलारे वाजपेयी तथा अन्य,पृ0 26

एवं जगत सम्बंधी अपनी अनुभूतियाँ तथा विचार अपने कथा-साहित्य में प्रकट किये हैं । समाज की विभिन्न समस्याओं के सम्बंध में भी उनकी कुछ मान्यताएँ तथा सुझाव रहे हैं, जिन्हें उन्होंने अपनी कहानियों तथा उपन्यासों के विभिन्न पात्रों द्वारा अभिव्यक्ति दी है । यत्र-तत्र उन्होंने राष्ट्र तथा राष्ट्रप्रेम, आदर्श और यथार्थ, साहित्यकार का उत्तरदायित्व आदि के सम्बंध में भी अपने मत प्रकट किये हैं । इन सबका विवेचन कर लेना भी उनकी जीवनी के प्रसंग में समीचीन प्रतीत होता है । अतएव यहाँ हम उनकी आध्यात्मिक एवं दार्शनिक, सामाजिक एवं साहित्यिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रप्रेम विषयक विचारधारा का आकलन उनके कथा-साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे । वाजपेयी जी के पात्र विभिन्न मनोदशा, स्तर एवं वृत्तियों के हैं, अतएव उनके मुख से नि:सृत प्रत्येक विचार लेखक का नहीं माना जा सकता । जो विचार प्राय: सभी प्रमुख पात्रों के माध्यम से समानरूप से प्रकट हुए हैं, उन्हें ही हम वाजपेयी जी के विचारों के रूप में ग्रहण करेंगे, अत: विचारधारा का विवेचन करते हुए हम इस तथ्य को अपने समक्ष रखेंगे ।

' वाजपेयी जी के कथा-साहित्य में प्रकट उनकी विचारधारा '

मनुष्य के लिए मृत्यु अनिवार्य है, अत: उसके ऐहिक एवं क्षणभंगुर जीवन का शाश्वत सार उसके विचार तथा कार्य हैं । इनमें भी मरणोपरांत उसके विचार अन्य लोगों के लिए चिरस्थायी प्रेरणातत्त्व का कार्य करते हैं । अतएव वाजपेयी जी के कथा-साहित्य के अध्ययन के प्रसंग में उनके विचारों का अध्ययन अतीव महत्त्वपूर्ण है ।

उनकी रचनाओं के अध्ययनोपरान्त यह कहा जा सकता है कि कुछ सामाजिक परिस्थितियों को देखकर वाजपेयी जी के मन में विभिन्न विचार उत्पन्न हुए, तदनुसार उन्होंने कथानक को चुनने तथा संगठित करने का प्रयत्न किया । परंतु केवल इस बात से उनके उपन्यासों को समग्ररूपेण विचारों पर आधारित नहीं कहा जा सकता । विचारों पर आधारित उपन्यासों के अंतर्गत प्रमुखत: वैचारिक द्वन्द्व को लेकर चलनेवाली रचनाओं का समावेश होता है ।

अपने उपन्यासों तथा कहानियों में लेखक अपने विचारों को प्रमुखरूप से दो प्रकार से व्यक्त करता है । प्रथम, स्थान-स्थान पर वह स्वयं उपस्थित होकर अपने विचार, जीवन या पात्रों की आलोचना-प्रत्यालोचना प्रस्तुत करता चलता है । इसको 'स्पष्ट विचाराभिव्यक्ति पद्धति' कहा जा सकता है । परंतु यह पद्धति अधिक प्रौढ़ उपन्यासों में स्थान प्राप्त नहीं कर सकी है । इसका कारण यही है कि इससे कथानक में अस्वाभाविकता तथा बोझिलता आ जाती है । कृतिकार एक ~~एक~~ उपदेशक या प्रचारक के रूप में सामने आ जाता है, परिणामस्वरूप रचना की कलात्मकता नष्ट हो जाती है, कथानक शिथिल हो जाता है तथा उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है । वाजपेयी जी के प्रारंभिक उपन्यासों में यत्र-तत्र यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, फलत: उनका रचनात्मक कौशल अधिक निखर नहीं पाया है । दूसरी पद्धति को 'अप्रत्यक्ष-विचाराभिव्यक्ति की पद्धति' कह सकते हैं । इसमें लेखक स्वयं प्रत्यक्ष नहीं आता है, किन्तु एक नाट्यकार की भाँति अपने विचारों को पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है । इससे उसके विचारों का स्पष्टीकरण तो हो ही जाता है, साथ ही कथा विकास एवम् चरित्र-चित्रण भी होता है ।

वाजपेयी जी ने अपने कथा-साहित्य में दोनों पद्धतियों का प्रयोग किया है । इन दोनों का सानुपातिक समन्वय उनके प्रौढ़ उपन्यासों में अधिक सुंदरता से हुआ है । प्रस्तुत अध्याय में वाजपेयी जी के विचारों को स्पष्ट करने के लिए उनके कथा-साहित्य का आश्रय लिया जायगा । उनके विचारों के प्रस्तुतीकरण के लिए उपरिकथित द्वितीय पद्धति का अनुसरण किया जायगा । अध्ययन की सुविधा के हेतु उनके विचारों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1- राजनीतिक विचार,

2- सामाजिक विचार,

3- दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचार,

4- साहित्यिक विचार ।

विचार उपलब्ध-

इनमें से वाजपेयी जी के उपन्यासों में साहित्यिक तथा कहानियों में राजनीतिक नहीं होते । राजनीतिक विचार उनके उपन्यास तथा साहित्यिक विचार उनके कहानी-साहित्य में ही उपलब्ध होते हैं, अत: अगले पृष्ठों में यथास्थान इस सम्बंधी विचार किया जायगा ।

राजनीतिक विचार

वाजपेयी जी ने अपनी रचनाओं में कुछ स्थानों पर विभिन्न राजनीतिक समस्याओं तथा उनसे बोझिल विभिन्न वादों पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं ।

देश, राष्ट्र और राष्ट्रीयता :

वाजपेयी जी की सदैव यह हार्दिक इच्छा रही है कि संसार में भारत देश का मस्तक उन्नत रहे ; किन्तु आपस के मतभेदों के कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती है । अपने 'विजय श्री' उपन्यास में राजनाथ कहता है , "मैं तो चाहता हूँ, हमारा राष्ट्र संसार के समक्ष अपना मस्तक सदा ऊँचा बनाये रखे ; किंतु मैं देखता यह हूँ कि हमारे यहाँ मिल-जुलकर रहने की प्रवृत्ति का ही उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है । सच पूछो तो हम तात्कालिक स्वार्थों की ओर ही देखते हैं ; भावी अभ्युत्थान की नवल संयोजनाओं की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता । आज स्थिति यह है कि पिता-पुत्र, भाई-भाई, यहाँ तक कि पास-पड़ोस के लोग तक शांतिपूर्वक नहीं रह पाते । राष्ट्रीय एकता का दिवालियापन और भला क्या होगा ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में लेखक ने अपना राष्ट्रप्रेम व्यक्त किया है ; किंतु भारत अपनी जनता की स्वार्थवृत्ति तथा तज्जन्य आंतरिक संघर्ष के कारण विश्व के राष्ट्रों की तुलना में पिछड़ा हुआ है, यह बात लेखक को बहुत ही पीड़ित करती है ।

वाजपेयी जी के कुछ उपन्यासों में गांधीवाद का प्रभाव स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है । समाज में जो वैषम्य फैला हुआ है उसे मार्क्स भी दूर करना चाहते थे और गांधी जी भी । अत: मूलत: दोनों की विचारधारा में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता । दोनों के सिद्धांतों का

1- विजय श्री, पृष्ठ 129.

लक्ष्य एक ही है ; किन्तु उनको प्राप्त करने का दोनों का साधन भिन्न है । एक हिंसा को साधन बनाकर चलता है, तो दूसरा अहिंसा को । यहीं पर वाजपेयी जी की विचारधारा स्पष्ट हो जाती है । साधनों के सम्बंध में वे गांधी जी को आदर्श मानते हैं । देश में जो विषमता दिखाई देती है, इसका मूल कारण केवल गुलामी है । 'पिपासा' उपन्यास में अपनी भाभी के कहने पर कि 'अमीरी-गरीबी भाग्य से मिलती है, यदि हम गरीब हैं तो अमीरों की अमीरी के लिए हममें जलन क्यों हो ? ' कमलनयन कहता है -' यह इसलिए है कि एक ओर दरिद्र और उसकी बेबसी और दूसरी ओर पूँजीपतियों के वैभव के प्रदर्शन का यह अंतर विधाता के विधान से नहीं, हमारे वर्तमान सामाजिक संगठन से उत्पन्न हुआ है । हमारा अपना देश होता, हमारी अपनी शासन सत्ता होती, तो हम ऐसे अनीतिमूलक वातावरण को सहन नहीं कर सकते । हम अगर मनुष्य के अपने अधिकार भर समझ सकने की भावना इस त्रस्त समाज में भर सकें, तो आज हमारे देश की यह स्थिति बदल सकती है । तब न तो गाँवों के झोपड़े उजड़कर नगरों की आलीशान इमारतें बनें, न किसानों को भूखों मारकर लोग क्रीड़ा, नृत्य और कलहास की किलकारियों में लिप्त रहने का अवसर पायें ।' [1]

उपर्युक्त विचारों से यह ज्ञात होता है कि वाजपेयी जी साम्यवाद की अपेक्षा गांधीवाद के अधिक समीप दीख पड़ते हैं । 'राजपथ', 'भूदान', आदि उपन्यासों में प्राप्त पात्रों के वार्तालाप द्वारा अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि 'समाज, देश और विश्व का कल्याण अहिंसा और सत्य का अनुसरण करके ही संभव है ।' [2]

सत्य और अहिंसा :

सामान्यत: प्रत्येक युग में हिंसा को पाप माना गया है । हिंसा के बदले प्रतिहिंसा के मार्ग को कदापि उचित नहीं समझा गया है । 'गोमती के तट पर' उपन्यास में राकेश कहता है'- हिंसा के बदले में प्रतिहिंसा' हमारे राष्ट्रपिता बापू की नीति कभी नहीं रही । उन्होंने उसके साथ भी दया, प्रेम, स्नेह और ममता का ही व्यवहार किया, जिसने उनकी हत्या का विचार स्थिर करके आगे कदम रखा था । उनका कहना था कि हिंसा से हम हिंसा को कभी नहीं जीत सकते । एक मात्र अहिंसा से ही हिंसा को जीत सकते हैं ।' [3]

1- पिपासा, पृ0 64

2- राजपथ, पृ0 289

3- गोमती के तट पर, पृ0 308-9

वाजपेयी जी अहिंसा के व्यवहारवाद से भलीभाँति परिचित हैं। अहिंसावादी लोगों की सरलता और भोलेपन से अन्य लोग अनुचित लाभ उठा सकते हैं ; छल-प्रपंच कर सकते हैं तथा देश का भी बहुत बड़ा अहित हो सकता है , अतएव वाजपेयी जी ने इस दिशा में पूरी सतर्कता बरतने का आह्वान करते हुए राधामोहन द्वारा कहलवाया है -`---- मैं मानता हूँ कि छल, प्रतारण, कूटनीति, हिंसा और असत्य किसी भी देश के लिए हितकर नहीं ; किंतु मैं देखता हूँ कि आज संसार की गति दूसरी ओर है। यदि हम तनिक भी चूके कि शताब्दियों के लिए दासता की शृंखला में आबद्ध हुए। अतएव हम सत्य, न्याय, अहिंसा और उदारता की आड़ में इतने भोले भी नहीं हो जाना चाहते कि संसार में हम मूर्ख और कायर समझे जायँ। हम चाहते हैं कि हम सत्यवादी बनें, किंतु साथ में इतने चतुर भी हों कि संसार की कूटनीति में छले जाकर हमें सत्य के लिए रोना भी न पड़े।'[1]

अस्पृश्यता :

महात्मा गांधी को वर्णाश्रम में आस्था नहीं थी। वे जन्म से किसी को ऊँच-नीच नहीं मानते थे। अपने कर्मों से मनुष्य ऊँच या नीच माना जाता है, ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था। हरिजनों को वे अन्य जाति के मनुष्यों की भाँति अपने पास उठने-बैठने देते थे। वाजपेयी जी भी सबको समान भाव से देखते हैं। हरिजनों के लिए उनके हृदय में, अन्य लोगों की भाँति ही, प्रेम, दया, करुणा आदि हैं। उन्हें वे अस्पृश्य नहीं मानते। `अधूरा स्वर्ग' उपन्यास के हरिजन पात्र किशन के प्रति सवर्ण कल्लू के हृदय में स्नेह है। वह उसके कन्धे पर हाथ रखकर ममताभरे स्वर में उसे खाट पर बैठने के लिए कहता है। कल्लू अपने और किशन में कोई अंतर नहीं मानता। वह मानता है कि भगवान ने सबको बराबर बनाया है। किशन से वह पूछता है कि चमार क्या मनुष्य नहीं होते ? वह ऊँच-नीच जाति-पाँति कुछ नहीं मानता।[2]

वस्तुत: प्रस्तुत उद्धरण के द्वारा लेखक ने अस्पृश्यता-निवारण सम्बंधी अपने विचार कल्लू के माध्यम से व्यक्त किये हैं।

जनतंत्र :

वाजपेयी जी गांधी जी के सिद्धान्तों को आदर्श अवश्य मानते हैं ; किन्तु उनके सिद्धान्तों का आडम्बर करनेवाली कांग्रेस से वे असंतुष्ट हैं। उनके मतानुसार कांग्रेस का पतन हो रहा है और उसका प्रमुख कारण है कुछ-एक ~~स्वार्थी~~ अयोग्य एवं स्वार्थी व्यक्तियों का केवल पद के लोभ में उसमें प्रवेश कर जाना। हम आज देख रहे हैं कि गुटबाजी के कारण ही गुटों के प्रतिनिधियों को अधिकार प्राप्त होता है, चाहे उनमें योग्यता हो या न हो। देश की इसी

1- प्रेमपथ , पृ0 104
2- अधूरा स्वर्ग, पृ0 173

स्थिति के सम्बंध में वाजपेयी जी ने अपने एक पात्र राजकुमार के द्वारा अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है -

'तुमको मालूम होना चाहिए कि 'डेमोक्रेसी इज़ दि कल्ट ऑफ इन्कोम्पीटेन्स ।' प्रजातंत्र में उन आग्रहों की ही महिमा होती है, जो सम्पर्कों से उत्पन्न करके उत्तरोत्तर बढ़ाये जाते हैं। योग्य आदमी अपने पक्ष में अभिमत बनाने के लिए कभी द्वार-द्वार मारा-मारा नहीं फिरता। यहाँ योग्यता का अर्थ होता है, दुनियादार होना, मिल-जुल करके प्रलोभन दे-दे करके अपने पक्ष में बहुमत स्थापित करना। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि योग्यतम व्यक्ति इस विषय में कभी अधिक क्षमताशाली और समर्थ नहीं होता। और यह आज ही नहीं, हमेशा रहेगा। मिल-जुल कर काम बनाने के सम्बंध में अगर तुम उदासीन रहोगे, तो सदैव मार खाओगे।'[1]

जनतंत्र में आज जनता की क्या स्थिति है तथा चुनाव लड़ने वाले किन-किन युक्ति-प्रयुक्तियों से अपना बहुमत स्थापित करते हैं, इस सम्बंध में लेखक ने अपने विचार स्पष्टरूप से प्रस्तुत किये हैं। वस्तुत: वाजपेयी जी मानते हैं कि गांधी जी के सिद्धान्तों के अभाव में इस देश में 'जनतंत्र' संभव नहीं है।

सामाजिक विचार

वाजपेयी जी ने स्त्री-पुरुष तथा उनके सम्बन्ध, नारी स्वातंत्र्य एवं समानाधिकार, प्रेम, व्यभिचार तथा वासना, पत्नी और प्रेयसी, दहेज-प्रथा तथा तलाकप्रथा आदि विषयों पर विस्तारपूर्वक अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

'प्रेमपथ' उपन्यास में स्त्री-पुरुष के विषय में रमेश कहता है -' मैं यह कह सकता हूँ कि एकमात्र सभ्यता के ही प्रकाश से स्त्री-जाति की समझ में पुरुष-जाति सतीत्व अपहरण करनेवाला एक शत्रु है और पुरुष-जाति के लिए स्त्री-जाति केवल इन्द्रिय-लिप्सा चरितार्थ करने की सामग्री।'[2]

'अपमान का भाग्य' कहानी के नरेन्द्र के कथनानुसार' मनुष्यता के मूल में नारीत्व की जो स्वतंत्र पूतात्मा है --- वह आदिशक्ति है, वह जगदम्बिका है। सच पूछिए, तो भगवान की संपूर्ण सत्ता का पूर्ण उदय नारी-हृदय की पवित्रता में ही मिलता है। उनके प्रति घृणा

1- कपट निद्रा, पृ0 131

2- प्रेमपथ, पृ0 173

कैसी । वे तो अर्चना-उपासना की वस्तु है ।"[1] इतना ही नहीं, 'उस क्षण का सुख' कहानी में सुरेन्द्र अनुभव करता है कि "नारी विश्व की आत्मा है । उसके आत्मदान को जो स्वीकार नहीं करता, तृषाकुल प्राणों के पावन मिलन में भी जो सीमाओं से ही बँधा रहता है, वह जीवन को समझ नहीं सकता, पा नहीं सकता । भले ही वह अपने मन से देवता बना रहे ।"[2] इस प्रकार जहाँ एक ओर लेखक नारी को शक्ति का प्रतीक मानता है, उसकी अनिवार्यता स्वीकार करता है, वहाँ दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित नारी को देखकर वह पीड़ित भी होता है । इस सम्बंध में 'एकाकी' कहानी में नीलाम्बर कहता है -" तुमने देखा वीणा, आंग्ल सभ्यता की इस नकल को । बच्चा माँ का दुग्ध तक प्राप्त नहीं कर सकता है । -क्योंकि यौवन का मोह, वासना का मद, मातृत्व की छाती पर कसकर चढ़ा बैठा है । बस, इतना हम सीख पाये हैं कि नारी के ऊँचे वक्ष को सुरक्षित और सजग रखने के लिए हमें बच्चे के रोने की परवा नहीं करनी चाहिए और धाय रख लेने का सुअवसर हमारा सहायक बन गया है ।"[3] मातृत्व नारी की चरम सार्थकता है ; परंतु मातृत्व-प्राप्ति के पश्चात् भी जो नारी अपनी सन्तान की अपेक्षा अपने वक्ष की सुरक्षा की चिन्ता करती है, उस पर व्यंग्य कसते हुए लेखक ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं ।

लेखक की दृष्टि से "पुरुष वासनाओं का क्रीत दास है । कब, किस स्थिति में, वह कैसा हो जायगा, इसका कुछ निश्चय नहीं ।"[4]

पुरुष जाति के लिए लेखक के हृदय में विश्वास एवं सम्मान की भावना नहीं है ; अत: 'तारा : एक प्रेरणा' कहानी में अपरिचित रमणी के प्रति विजयबाबू के मन में आदर भाव का प्रवेश होता है, ऐसा उनके कहने पर बिहारी कहता है -" मैं तो उसे वासनामूलक समझता हूँ । पहले पुरुष इन गुलाब के फूलों को देख-देखकर इनका आदर करने की चेष्टा करते हैं, फिर उनसे अपना निकटत्व स्थापित करके उनका सौरभ लूटते हैं और जब कभी संयोग पा जाते हैं , तो उन्हें उसकी टहनी से पृथक् करके सूँघते हैं और फेंक देते हैं । मैं तो पुरुष जाति को इसी रूप में देखता आया हूँ ।"[5]

1- हिलोर, पृ0 14

2- बात एक नाते की, पृ0 136

3- उतार-चढ़ाव, पृ0 181

4- मधुपर्क, पृ0 61

5- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 48

नारी एवं पुरुष की लेखक तुलना करता है। 'ज्वाला' कहानी में नरगिस कहती है - "नारी के पास जो कुछ भी है, वह केवल उत्सर्ग के लिए है, न्योछावर होने के लिए। और जब एक बार वह अपना सर्वस्व समर्पण कर चुकती है, तब वह रिक्त हो जाती है। उसके पास फिर कुछ रह नहीं जाता। किन्तु पुरुष की तृष्णा कभी मरती नहीं। वह बराबर कुछ और चाहता है- कुछ और। किन्तु तुम्हीं बताओ, तब नारी के पास 'कुछ और' की श्रेणी का रह ही क्या जाता है।"[1]

अन्त में पुरुष की असमर्थता तथा भगवान की सामर्थ्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए 'गृहस्वामिनी' की रजनी कहती है -" नारी के जीवन का निर्माण पुरुष नहीं कर सकता। उसे तो करुणानिधान भगवान् का स्नेह, उसी की दया पर अवलम्बित रहकर अपने आप अपने जीवन की रचना करनी पड़ती है। मनुष्य में इतनी सामर्थ्य कहाँ जो वह नारी की जीवन-सरिता की गति का सारथी हो सके। भगवान की दया ही नारी की शक्ति है।"[2]

स्त्री - पुरुष सम्बन्ध :

स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में 'रंगीन भ्रम' कहानी में वाजपेयी जी लिखते हैं कि स्त्री को मारना अपनी आत्मा को मारना है। क्योंकि वह उसकी अपनी आत्मा ही तो होती है। जीवन की प्रत्येक साँस के साथ उसका सम्बन्ध है। वह शरीर से भिन्न होकर भी अपने से भिन्न नहीं होती ; क्योंकि उसमें अपना प्राण खेलता है।"[3] स्त्री तो पति की अर्धांगिनी और जीवन-संगिनी है। दोनों परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। नारी, पुरुषों के लिए केवल भोगने की वस्तु नहीं है। 'पुनर्मिलन' कहानी में अम्बिका सोचता है - " मैं उस पत्नी को नारी नहीं समझता, जो अपने पति की भूख शांति करने में समर्थ न हो, स्वामी के इधर-उधर भटकने के अवसरों पर जो उसकी सुरक्षा का समर्थ माध्यम न बन पाये। पशु को तो बाँध कर ही रखा जाता है। आदमी के अंदर जितना पशुत्व होता है, योग्य पत्नी उसका शमन और मांगलीकरण बनकर रहती है। अपनी छवि-माधुरी में, सर्वस्व समर्पण के नाना प्रकारों से, हास-परिहास, मान-मनुहार, क्रीड़ा-कौतुक-यहाँ तक कि तर्क-वितर्क के प्यारे और स्नेह से भीगे हुए विविध प्रयोगों से।"[4] 'उर्वशी' के बिहारी का दृढ़ विश्वास है कि "अगर हम यह जान लें कि पुरुष और नारी का सम्बन्ध जितना मानसिक है, शारीरिक उससे

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 171-72
2- पुष्करिणी, पृ0 192
3- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 145
4- होटल का कमरा, पृ0 63-64।

किसी प्रकार कम नहीं है ; तो इस विद्रोह में हमें पीड़ित मानवता के चीत्कार और जागरण के ही चिन्ह मिलेंगे । दो में से कोई भी एक जब दूसरे को तृप्ति नहीं दे पाता, तभी वह उसके लिए असंतोष और अतृप्ति का कारण बनता है और अतृप्ति देकर भी जो संस्कृति मनुष्य को कोरे त्याग का उपदेश देती है, वह आधारहीन, दुर्बल और अंदर से खोखली है । जब मनुष्य उसका निर्वाह नहीं कर पाता, तभी वह साथी के प्रति अविश्वास का पात्र बनने को विवश होता है ।[1]

उपर्युक्त उद्धरण में वाजपेयी जी ने पुरुष और नारी के सम्बन्धों का सूक्ष्म एवं तथ्यपूर्ण विवेचन करते हुए बतलाया है कि दाम्पत्य- जीवन में पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए लेखक दोनों के मानसिक सम्बंधों के साथ-साथ शारीरिक संबंधों को भी अनिवार्य मानता है ।

वाजपेयी जी मानते हैं कि समाज को स्वस्थ रखने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पुरुष का सम्बंध अपनी पत्नी तक ही सीमित हो । शारीरिक भूख मिटाने के लिए पुरुष का भटकते रहना किसी भी परिस्थिति में श्रेयस्कर नहीं है । वह तो एक निम्न कोटि का रास्ता है । इस सम्बंध में 'स्वप्नों की गोद' उपन्यास का रामगोपाल गंगादीन से कहता है -

' मनुष्य अपनी शारीरिक भूख वेश्यालय में जाकर शान्त कर सकता है ; किन्तु आत्मा की भूख और वस्तु है । इसके अलावा तरह-तरह की बीमारियाँ हो जाने का डर रहता है ; जिनसे सारा जीवन नष्ट हो जाता है । आज के युग की यह मान्यता अवश्य है कि भूख लगने पर भोजन करो ; किन्तु इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं कि मनुष्य विष्टा खा ले । गंगादीन, जीवन का असली सुख, मनुष्य को, पत्नी से ही प्राप्त होता है ; क्योंकि उसके समर्पण में उसकी आत्मा का भी समर्पण होता है । वेश्या की तरह उसका यह व्यापार नहीं है । जो सुख-शान्ति मनुष्य को अपनी पत्नी द्वारा मिलती है, वह किसी और प्रकार संभव नहीं ।'[2]

जिन स्त्रियों का सम्बंध अपने पति से और जिन पुरुषों का सम्बंध अपनी पत्नी से बहुत सीमित रहता है, उनमें न तो स्त्रियों को अपने पति की और न उनके स्वामियों को अपनी पत्नी की उतनी परवाह रहती है, जितनी कि रहनी चाहिए । फलत: ऐसे पुरुष परस्त्री और वेश्यागामी तथा स्त्री परपुरुषगामी हो जाती है । इसका परिणाम यह आता है कि ऐसे स्त्री-पुरुषों का गार्हस्थिक जीवन कलह एवं अशांतिमय हो जाता है और सुख-सौख्य

1- होटल का कमरा, पृ0 142

2- स्वप्नों की गोद, पृ0 123-24

उनके जीवन में स्वप्न बन जाते हैं ।

नारी -स्वातंत्र्य तथा समानाधिकार :

जहाँ तक नारी-स्वातंत्र्य एवं समानाधिकार का प्रश्न है, वाजपेयी जी एक सीमा तक इसके पक्ष में हैं । `कर्मपथ` उपन्यास में पद्मधर अपनी पत्नी सरस्वती से कहता है -" मैं स्वयं नारी की स्वतंत्रता का पक्षपाती हूँ, परन्तु ऐसी स्वतंत्रता का नहीं, जो मनुष्य के सामाजिक स्वस्थ रूप को ही विकारग्रस्त बना दे ।"[1] वाजपेयी जी मानते हैं कि नारी को स्वातंत्र्य अवश्य मिलना चाहिए ; किन्तु उस स्वातंत्र्य का उसे दुरुपयोग नहीं करना चाहिए । समाज में प्राय: देखा जाता है कि अधिक स्वातंत्र्य का दुष्परिणाम अनेक-भली-भोली नारियों को भुगतना पड़ रहा है । नारी को केवल स्वातंत्र्य ही नहीं, समान अधिकार भी प्राप्त होने चाहिए । इस सम्बंध में पद्मधर (शान्तिप्रकाश) से वाजपेयी जी ने जो कहलवाया है, सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है । वह कहता है -

"---- और उस कामी, नराधम पिता ने अपना दूसरा विवाह करके कोई गलती नहीं की । बहुत बड़ा पुण्यार्जन किया था उसने ! क्योंकि पुरुष को अल्लामियाँ ने यह अधिकार दे दिया है कि वह हँसी-खुशी के साथ विवाह-पर-विवाह करता जाय । इसमें कोई बुराई वह नहीं देखता ; क्योंकि समाज इसे उचित समझता है । क्योंकि समाज केवल पुरुषों का है । स्त्री उससे भिन्न है ; क्योंकि पुरुषों का जगत्, जिसमें वह खुद भी शामिल है, इस अधिकार के सुख का भागी है । स्त्री और चीज़ है । उसको यह स्वतंत्रता मिल ही कैसे सकती है ! क्योंकि उसका जीवन दो कौड़ी का होता है । पुरुष उसको खरीद जो लेता है ! एक पति का सुख प्राप्त कर लेने के बाद वह दाम्पत्यसुख के पुन: प्राप्त करने की अधिकारिणी रह ही कहाँ जाती है ! ऐसी होने पर वह दूषित न हो जायगी ? विष-ही-विष उसकी देह-भर में फैल जायगा । और फिर वह विष हमारे समाज में फैलकर उसे रसातल को न ले जायगा ! तो आप यही कहना चाहते हैं न कि पुरुष आवश्यकता पड़ने पर तुरंत दूसरा विवाह कर सकता है ! क्योंकि उसी की आवश्यकता समाज की चीज़ है ; किन्तु स्त्री की आवश्यकता, उसका उत्पीड़न, उसकी मानसिक और दैहिक भूख समाज के लिए कोई चीज़ नहीं है ! ऐसी दशा में समाज उससे सहानुभूति क्यों रखे ! और इस प्रश्न पर ठंडे दिल से विचार करने की आवश्यकता ही क्या है ! हमारे धर्मशास्त्र इसकी अनुमति नहीं देते । स्त्री यदि पुरुष के समान अधिकार रखनेवाली समझी जाती, तो हमारे न्याय-धर्म-शास्त्रों में इस की स्पष्ट व्यवस्था न होती - तो अनेक

1- `कर्मपथ` पृ0 136-37

देशों की क्रांतियाँ, राजविप्लव, उनके इतिहास, आज का जगत् और उसकी आधुनिक विचार-धाराएँ चीज़ क्या हैं, जो हमारे इस परम्परागत विधान को टस-से-मस करने का दम भर सकें।[1]

उपर्युक्त उद्धरण में लेखक ने व्यंगात्मक शैली से नारी के समानाधिकार के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। केवल पुरुषों को सब अधिकार देनेवाली समाज-व्यवस्था पर उसने करारी चोट की है। लेखक यह मानता है कि स्त्री और पुरुष के अधिकारों में किसी-प्रकार का अंतर नहीं होना चाहिए।

प्रेम, विवाह और वासना :

प्रेम-विषयक अपने विचार प्रस्तुत करते हुए 'विश्वास का बल' उपन्यास में मुरारी कहता है - 'मैं प्यार को हृदय की एक भावना मात्र मानता हूँ। उसके रूप की न तो कोई निश्चित रेखा मानता हूँ, न परिधि। प्यार पत्थर या लोह का टुकड़ा नहीं है। वह रबर भी नहीं है और न स्पंज है। कोई चीज़ देकर आप प्यार की प्रतिमा स्थापित करना भी चाहें, तो मैं यही कहूँगा कि वह प्रतिमा निर्जीव है। मैं प्यार का कोई मूल्य नहीं मानता ; क्योंकि यदि वह अमूल्य नहीं है, तो प्यार है ही नहीं।'[2]

वाजपेयी जी के मतानुसार प्रेम अतुलनीय तथा अमूल्य है। वे मानते हैं कि 'स्नेह और प्रेम भी ईश्वर का अमूल्य आविष्कार है।'[3] इस विषय में 'निर्माल्य' कहानी का नायक सोचता है -' प्रेम इतना सस्ता नहीं हुआ करता। वह बड़ी मँहगी वस्तु है। उसके लिए उत्सर्ग करना होता है। वह प्राणों के प्रत्येक स्पन्दन से विजड़ित है। जीवन के स्वर-स्वर से वह संलग्न है।'[4] प्रेम अमूल्य है तथा जीवन से अभिन्न है। इस विषय में 'त्याग' कहानी की विमला कहती है -' प्रेम के अनन्त रूप हैं, अनंत पंथ। मानव-प्रकृति का वह एक शाश्वत अंग है। निश्चयपूर्वक उसके सम्बंध में कोई कुछ कैसे कह सकता है ? प्रेम माँगा भी जाता है, मिलता भी है और लौटाया भी जाता है।'[5] मनुष्य जीवन में प्रेम अनिवार्य है। इसके अभाव में मनुष्य अनेक विकृतियों का भोग बन जाता है। वाजपेयी जी के विचारानुसार मानव जीवन में प्रेम कुछ सीमा तक आवश्यक है। ' कला की दृष्टि' कहानी में विष्णु कहता है - 'मनुष्य को जब प्रेम कहीं

1- दो बहनें, पृ0 24-25

2- विश्वास का बल, पृ0 177

3- मधुपर्क, पृ0 116

4- स्नेह,बाती और लौ, पृ0 218

5- हिलोर, पृ0 65

मिलता नहीं, तब निराश होकर वह अपने विवेक का बैलेंस स्थिर नहीं रख पाता । प्राय: देखा गया है कि ऐसी स्थिति में उसका मस्तिष्क विकृत हो जाता है ।`[1] प्रेम विषयक इतना सब कहने के पश्चात् लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्रेम, वासना से परे नहीं है । इसीलिए तो अंत में वह कहता है कि `वासना को प्रेम से अलग करोगे कैसे ?`[2]

अपनी कहानियों में वाजपेयी जी ने विवाह-विषयक भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। `अन्याय` कहानी के मोहन के कथनानुसार आजकल माता-पिता अपने लड़के -लड़की का ब्याह जिस परिपाटी से करते हैं, वह सदोष है । जिनका विवाह किया जाता है, जिनको अपनी पत्नी अथवा अपने पति से जीवन-भर काम रहता है, उनकी कोई परवा नहीं की जाती, न उनकी कोई सम्मति ही ली जाती है । इसीलिये प्राय: यह विषमता पैदा हो जाती है कि न तो वर को अपनी रुचि के अनुकूल पत्नी मिलती है और न लड़की को अपनी इच्छा के अनुसार वर । इसका परिणाम यह होता है कि वह दाम्पत्य-जीवन, जिसमें स्वर्गीय सुख की प्राप्ति होनी चाहिए, किरकिरा रहता है । --- इसलिये पति-पत्नी का विवाह-सूत्र में बँधना पति-पत्नी की इच्छा पर ही रहना उचित है ।`[3] वस्तुत: विवाह मानव जीवन का एक महान् एवम् महत्त्वपूर्ण प्रश्न है । उसे हल करने के लिए जो अनुचित मार्ग अपनाये जाते हैं, उन्हीं के कारण भारतीय समाज का ह्रास हो रहा है । एक समय ऐसा था जब जिनका विवाह होता था, उनकी इच्छा का कतई ध्यान नहीं रखा जाता था । फलत: ऐसे विवाहित व्यक्ति कभी-कभी स्वर्ग के सुख की नहीं, परंतु नरक की यातना का अनुभव करते थे । ऐसी विवाह-प्रथा के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए `अविवाहिता` कहानी में शीतलाचरण कहता है -` जिसके जीवन का एक महान प्रश्न हल करने के लिए यह सब कुछ किया जाता है, उसकी रुचि और भावना मालूम किये बिना उसके भाग्य का निर्णय करना उसके प्रति स्वेच्छाचार करना है और इस प्रकार का स्वेच्छाचार ही भारतीय समाज के ह्रास का कारण है ।`[4]

सांप्रत समाज में बहुत-कुछ परिवर्तन आ गया है । लेखक ने यह भी दिखलाने का प्रयत्न किया है कि अपनी पसंद के अनुसार विवाह करनेवाले अधिकांश लोग सुखी नहीं होते ।

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 53

2- वही, पृ0 61

3- मधुपर्क, पृ0 28-29

4- मधुपर्क, पृ0 74

रूपवती लड़की प्रतिकूल प्रकृति की सिद्ध होती है और जीवन-पर्यन्त संघर्ष चलता ही रहता है। अत: लेखक अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'विवाह की प्राचीन परिपाटी एक दृष्टि से बुरी भी नहीं है।'[1] विवाह -विषयक वाजपेयी जी के विचार बड़े ही क्रांतिकारी हैं। केवल सात भाँवरों को विवाह मानने के लिए वे तैयार नहीं हैं। ऐसा माननेवालों पर वे कटु-प्रहार करते हैं। 'राजपथ' कहानी में उमानाथ कहता है -'मुझे उन लोगों का समाज न चाहिए जो पारस्परिक मनोभावों, आत्मगत आकर्षणों, आह्वानों, निमंत्रणों और प्रतिदानों को वास्तविक विवाह न मानकर सात फेरों को ही विवाह मान बैठते हैं। उनका सिर फिर गया है।'[2]

प्रेम तथा विवाह के साथ-साथ वासना तथा व्यभिचार के विषय में भी वाजपेयी जी के 'प्रेमपथ' उपन्यास में रमेश कहता है - 'मनुष्य जाति में व्यभिचार और विषय-वासना बढ़ने का कारण सभ्यता का प्रकाश है। मैं गर्व के साथ कह सकता हूँ कि आज भी जिन पहाड़ी और जंगली जातियों में सभ्यता नहीं है, उनमें व्यभिचार की मात्रा कम है। मैं यह भी कह सकता हूँ कि शिक्षितों की अपेक्षा अशिक्षितों में व्यभिचार और विषय-वासना कम है।'[3]

लेखक मानता है कि सभ्यता ने ही मनुष्य-जाति का अहित किया है। सभ्य कहे जानेवाले लोगों की अपेक्षा असभ्य मानी जानेवाली जातियाँ अधिक चरित्रवान् होती हैं, ऐसा वाजपेयी जी का विचार है।

पत्नी और प्रेयसी :

वाजपेयी जी की दृष्टि से पत्नी और प्रेयसी में पर्याप्त अंतर है। उनके मतानुसार प्रेयसी कभी पत्नी नहीं बन सकती, न ही पत्नी प्रेयसी का स्थान ले सकती है। इसीलिए तो 'निमंत्रण' उपन्यास में रेणु अपने पति के शब्दों का पुनरावर्तन करते हुए कहती है- ' कहते थे प्रेयसी, प्रेयसी तो देवी होती है। वह अर्चना की वस्तु है। उसके साथ कहीं ब्याह हो सकता है! विवाह तो देवी को नारी बना डालता है। विवाह तो शरीर के उन स्थूल व्यापारों से संबद्ध है, जिनसे गंध आती है।- जो बासी पड़ते-पड़ते अंत में सड़ जाते हैं; किंतु प्रेयसी तो प्राणेश्वरी होती है। विवाह तो भूख-शांति का एक मार्ग है; किन्तु तृष्णा जो अजर होती है, उसकी शान्ति तो प्रेयसी ही करती है, अपने आत्मदान से। वह बदला नहीं

1- मधुपर्क, पृ0 31

2- होटल का कमरा, पृ0 42

3- प्रेमपथ, पृ0 174

चाहती । उसे कोई आकांक्षा नहीं होती । वह अर्पित ही करती जाती है ; किन्तु पत्नी ? वह तो बदला चाहती है । चाहती है कि वह कुछ पाये, उसको कुछ प्राप्त हो । कल्पना पर उसका निवास नहीं होता । मानसिक पूजा का जो एक सौंदर्य होता है, एक माधुर्य होता है, वह उससे दूर रहती है । वह नश्वर है ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में लेखक प्रेयसी और पत्नी में अंतर बतलाते हुए अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि पत्नी की अपेक्षा प्रेयसी अधिक श्रेयस्कर है । प्रेयसी का प्रेम पत्नी के प्रेम की अपेक्षा अधिक शुद्ध, स्वार्थ से परे, चिरंजीव तथा दीर्घकाल तक प्रेरणा देनेवाला होता है । संभवत: इस कारण से वाजपेयी जी ने अपने प्राय: सभी उपन्यासों में प्रेयसी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है । उदाहरण के लिए 'निमंत्रण' की मालती, 'चलते-चलते' की वैशाली, 'दो बहनें' की आशा तथा 'मुसकान' की ललिता को देखा जा सकता है ।

दहेज-प्रथा :

इस प्रथा ने अनेक सामाजिक अनिष्टों को निमंत्रित किया है । इस प्रथा के सम्बंध में 'प्रेमपथ' उपन्यास में रमेश कहता है-"बालक और बालिका के विवाह में प्रचलित एकमात्र दहेज की प्रथा ही वैधव्य-समस्या का कारण है । जब तक यह दहेज की प्रथा नष्ट नहीं हो जाती, जब तक हमारे समाज से इसका मूल-विच्छेद नहीं हो जाता, तब तक वैधव्य-समस्या कभी सुलझ ही नहीं सकती ; प्रत्युत उसमें वृद्धि ही होती रहेगी । एकमात्र दहेज की प्रथा के कारण से ही हमारे देश में करोड़ों की संख्या में पन्द्रह और सोलह वर्ष की बाल-विधवाएँ जीवन की घोर यातनाएँ भोग रही हैं ।"[2]

दहेज-प्रथा की समस्या को उठाकर ही लेखक शांत नहीं रहा है, अपितु उसने उसके समाधान हेतु अपना सुझाव भी दिया है । दहेज-प्रथा के मूल कारणों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए रमेश कहता है "--- यह प्रथा सनातन नहीं है । यह दूसरी बात है कि माँ-बाप जब बालिका का समर्पण करते रहे हों, उस समय जो कुछ उनसे हो सकता है, वर-पक्ष को देकर प्रसन्न करते रहे हों , किन्तु जैसी अवस्था दहेज-प्रथा की आज हमारे समाज में प्रचलित है, उसे देखकर संसार के सभी सभ्य देश हमसे घृणा करते हैं और वास्तव में है भी यह बात घृणा के योग्य ।-----

---

1- निमंत्रण, पृ0 222

2- प्रेमपथ, पृ0 109

बालक और बालिकाओं के विवाहों पर जितना ध्यान दिया जाय, उतना ही मालूम होगा कि जिस प्रकार का समुचित सम्बन्ध बालक और बालिका का होना चाहिए, कदापि नहीं होता। एक सभ्य और व्यवहार-कुशल बालिका केवल इस प्रथा के कारण ही एक मूर्ख वर के हाथ में समर्पित होती है। एक होनहार बालक केवल रुपये की शक्ति से अत्यंत नीच स्वभावापन्न बालिका के साथ विवाहित होकर छला जाता है। सारांश यह कि इस प्रथा के कारण रूप, यौवन, शिक्षा, गुण, सुशीलता, व्यवहार-कुशलता और लोकप्रियता आदि जीवन के स्वर्गीय गुण अनादृत होकर केवल रुपये, पैसे और धनसम्पत्ति के नाम पर नष्ट-भ्रष्ट होते हैं। बालक और बालिका का इस प्रकार केवल लौकिक सम्बंध होता है, प्राकृतिक नहीं। फलत: इस प्रकार के सम्बंध सर्वदा प्राकृतिक दाम्पत्य सुखोपभोग से वंचित रहते हैं। सच पूछो तो केवल बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह ही इस प्रथा के मूल कारण हैं। और बाल-विवाह एवं वृद्ध-विवाह वैधव्य समस्या के जन्मदाता हैं।'[1]

लेखक के विचारानुसार दहेज-प्रथा के कारण ही बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, वैधव्य आदि सामाजिक समस्याओं का जन्म होता है। इसके उपरांत तलाक-प्रथा के पक्ष एवं विपक्ष में लेखक ने क्रमश: सत्य तथा चेतना के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किये हैं।'[2] और अंत में सभापति द्वारा जो निर्णय दिया गया है कि 'तलाक-प्रथा हमारे सामाजिक जीवन के विकास के लिए परम आवश्यक नहीं है', लेखक का ही निर्णय है।

'दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विचार'

वाजपेयी जी ने आध्यात्मिक विचार स्वतंत्ररूप से प्रस्तुत किये हैं। उन पर किसी मत-वाद का प्रभाव नहीं है। उनके विचार अपने निजी अनुभवों पर आधारित हैं। आध्यात्मिक विचारों के प्रसंग में लेखकों के पिटे-पिटाये मत प्राय: देखने को मिलते हैं, परंतु वाजपेयी जी के विचारों में ऐसी बात नहीं है। आध्यात्मिक विचारों के अंतर्गत हम देखेंगे कि उनके विचार स्वतंत्र एवं मौलिक होने के कारण बड़े ही रोचक हैं।

जीवन और जगत् :

वाजपेयी जी के मतानुसार जीवन इतना सस्ता नहीं है कि जब तुम चाहो, इसे समाप्त कर दो।[3] जीवन और मृत्यु का चक्र सदैव चलता ही रहता है। मनुष्य की आत्मा अमर है,

---

1- प्रेमपथ, पृ0 110-111

2- गुप्तधन, पृ0 56 से 63

3- मोहत्याग, पृ0 103

उसके रूप में ही परिवर्तन होता रहता है । मृत्यु की अनिवार्यता के विषय में एक स्थान पर चर्चा करते हुए 'निरन्तर' उपन्यास में जाह्नवी हेम से कहती है -"बीज जब धरती पर गिरता है, मिट्टी उसे अपने में मिला लेती है । सर्दी, नमी और गर्मी पाकर बीज धीरे -धीरे सड़ जाता है, तब उसमें अंकुर फूट उठता है । तो बीज का सड़ जाना, उसका नष्ट हो जाना ही मरण है । लेकिन उसका अंकुआ फूटना सृष्टि है, जन्म है । जब तक बीज सड़ेगा नहीं, तब तब तक अंकुर भी नहीं फूटेगा । जीव भी जब मर जाता है, तभी उसका जन्म होता है । जन्म भी एक परिवर्तन का नाम है । अनाज खेत में प्र पैदा होता है । उसको पीस लेने से आटा बनता है । आटे से ही रोटी पकाई जाती है, जिसे हम खाते हैं । अब जरा सोचो, बीज ने अपने कितने रूप बदल डाले हैं । उसका अंकुर जो फूटता है, वह भी बीज का ही एक रूप होता है - बदला हुआ रूप । ऐसे ही बच्चा जन्म लेता है, तब वह किसी बूढ़े, जवान या बच्चे के मरण का बदला हुआ रूप होता है । मनुष्य की आत्मा कभी मरती नहीं, वह सदा अपना रूप बदलती रहती है ।"[1] उपर्युक्त उद्धरण में सरल भाषा में वाजपेयी जी ने गीता की अगम्य बात को जन-साधारण के लिए प्रस्तुत किया है । गीता का यह श्लोक वाजपेयी जी के इस विचार के साथ कितना साम्य रखता है -

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।"[2]

सांख्य योग की इस बात को वाजपेयी जी ने प्रकृति से उदाहरण देकर बड़े ही व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करके सामान्य मनुष्य के लिए भी गम्य बना दिया है।

प्रारंभ में जीवन के सम्बंध में सोचने पर लेखक मानता था" जीवन भी एक खेल है । इस खेल में हम कभी हारते हैं, कभी जीतते हैं । कभी किसी खेल में हारते-जीतते हारते जीतते हैं । और कभी जीतते-जीतते हारते हैं । विचारों की आंधी, भावों में बवण्डर और कल्पना का प्राबल्य जीवन को उलझन में भले ही डाल दे, पर उससे जीवन का खेल बिगड़ता नहीं, हाँ महत्तम अवश्य हो जाता है ।"[3] जहाँ लेखक ने प्रस्तुत उदाहरण में जीवन को खेल, खेल कहा है, वहाँ अन्यत्र उसकी यह मान्यता जैसे बदल गई है । उसके मतानुसार 'मनुष्य का जीवन भी एक दीपक है । बत्ती बदल जाती है ; किन्तु दीपक वही बना रहता है । घी हुआ या तेल, जब कम पड़ता जाता है, तभी और छोड़ दिया जाता है । यों दीपक और जीवन, दोनों के लिए स्नेह की अपेक्षा है । स्नेहाभाव 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0

1- निरंतर-पृ0 52
2- श्री मद्भगवतगीता, 2।22 , संस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय,पृ0 59
3- मधुपर्क, पृ0 133

यदि कभी पास न टिक सके, तो बत्ती आज है और सदा रहेगी, किन्तु जब स्नेह चुक गया हो, तब बत्ती कैसे टिक सकती है , कब तक टिक सकती है ! वह जल जायगी और दीपक में उसका शरीर भर, कुछ देर के लिए, रह जायगा । फिर तो वायु का एक झोंका ही उसे चिर शांत कर डालेगा । जीवन के भीतर जो बत्ती पड़ी है , जिसे हम चाहे कह डालें- कल्पना की रानी या स्वप्न की प्रतिमा - तभी तक ज्योतित रहेगी, जब तक स्नेह रहेगा । और जब वह स्नेह ही नहीं रह गया, तब वह प्रभा, प्रकाश कहाँ दृष्टिगत होगा !"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में लेखक ने बतलाया है कि क्या दीपक और क्या जीवन, दोनों के लिए स्नेह अनिवार्य है । स्नेहाभाव में न तो दीपक लम्बे समय तक जल सकता है, न ही जीवन का अस्तित्व दीर्घकाल तक रहता है । अन्यत्र एक स्थान पर जीवन सम्बंधी अपने विचार प्रस्तुत करते हुए वाजपेयी जी लिखते हैं -"जीवन एक ऐसा गहन कान्तार है, जिसमें इस प्रकार की छोटी-मोटी संभावनाएँ उतना भी महत्त्व नहीं रखती, जितना एक तृण का होता है ।"[2]

जीवन का गंभीरतापूर्वक विचार करने पर भी लेखक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका है कि जीवन क्या है । इतना निश्चित है कि वाजपेयी जी के कथनानुसार जीवन अमूल्य है। उसका सदुपयोग किया जाना चाहिए ; क्योंकि मनुष्य-जीवन सरलता से प्राप्त नहीं होता । अपने इसी विचार को व्यक्त करते हुए एक स्थल पर उन्होंने लिखा है-"माना कि जीवन तृण की भाँति फेंकने-खोने की वस्तु नहीं है । किंतु जीवन केवल भोग और क्रीड़ा-कौतुक की चीज़ भी तो नहीं है ।"[3] इस विचार की अन्यत्र भी एक स्थल पर पुनरावृत्ति हुई है । [4] जीवन का महत्त्व स्वीकारते हुए लेखक कहता है -"जीवन में क्रांति चाहे जब उत्पन्न कर डालो, जीवन का अंत तो और भी शीघ्रता से कर लिया जाता है, लेकिन जीवन का निर्माण एक-दो दिन में नहीं होता । वह तो एक युग की साधना की अपेक्षा रखता है ।"[5]

अपनी कहानियों के भिन्न-भिन्न पात्रों के मुख से लेखक ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं ; अत: जीवन सम्बन्धी उनके विचारों में अंतर पाया जाता है । एक कहानी में वाजपेयी जी ने

~~1- निरन्तर, पृ0 133~~

1- होटल का कमरा, पृ0 92

2- खाली बोतल, पृ0 31

3- खाली बोतल, पृ0 261

4- खाली बोतल, पृ0 258

5- स्नेह, बाती और लौ, पृ. 184

दौलत को ज़िंदगी कहा है । दुनियाँ के सारे अमीर-उमरा दौलत से ही ज़िन्दगी की खरीद-फ़रोख्त करते हैं ।"[1] प्रस्तुत शब्द एक चोर के मुख से निसृत हुए हैं । उनका एक और पात्र कहता है -" मनुष्य का जीवन भी क्या एक किस्म का नशा नहीं है ? नशा नहीं है, तो एक-दूसरे को क्यों नोंचते-खसोटते हो ? झोपड़ियाँ जलाकर महल खड़ा करने की साध नशा नहीं है, तो फिर क्या है ? दुनिया को धोखा देकर , उसकी आँखों में धूल झोंककर, संसार के जो समस्त व्यवसाय-वाणिज्य अहर्निश तुमुल नाद के साथ चल रहे हैं, उनके मूल में भी तो एक नशा ही है ।"[2]

अंतिम दो उद्धरणों में जीवन-सम्बंधी जो विचार लेखक ने व्यक्त किये हैं, उनका मेल, उपर्युक्त विचारों के साथ किसी भी तरह से बैठ नहीं सकता । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे लेखक जीवन सम्बंधी विचार प्रस्तुत करने में उलझ गया है । अंतिम दो उद्धरणों के अतिरिक्त उपरिकथित शेष सभी, जीवन सम्बंधी विचारों के आधार पर यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि जीवन को पूर्ण गांभीर्य के साथ लेखक ने देखा है तथा तत्सम्बंधी गंभीरतापूर्वक विचार भी किया है । उनकी दृष्टि से जीवन तपस्या एवं साधना के लिए है ; अत: उसका मूल्य तनिक भी कम नहीं है । सात दशाब्दियों से भी अधिक वर्षों के जीवन के अनुभवों के पश्चात् लेखक कहता है-"मैंने अनुभव किया कि जीवन में अमृत भी है और विष भी । जीवन की सार्थकता मैंने सदा विष को जानकर पान करने और फिर उसे त्याग और तपश्चर्या के बल से अमृतरूप देने में ही अनुभव की ।"[3] वस्तुत: जिन परिस्थितियों में जैसे अनुभव लेखक को हुए, जीवन को उन्होंने ऐसा ही समझा ।

जगत के सम्बंध में लेखक ने एक स्थान पर लिखा है कि सारी दुनियाँ एक चलचित्र है[4] चलचित्र में कलाकार आता है और अपना कार्य करके चला जाता है । इस संसार में भी मनुष्य आता है और ईश्वर द्वारा सौंपा गया कार्य करके चला जाता है ; परंतु आगे चलकर लेखक जैसे अपने इस विचार से संतुष्ट नहीं है ; अत: अपने चिंतनशील स्वभाव का परिचय देते हुए वह लिखता है -" मेरे विचार से तो यह जगत् भी स्वप्न है । हम और आप उस स्वप्न के अंग हैं।"[5] अपने इस विचार को विस्तृतरूप से अन्यत्र एक स्थल पर व्यक्त करते हुए वाजपेयी जी कहते हैं -

---

~~1- स्नेह ,बाती और लौ, पृ0 184~~

1- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 105

2- होटल का कमरा- पृ0 118-19

3- मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 169

4- स्नेह बाती और लौ, पृ0 216

5- कवाज़ी का ताजमहल, पृ 119

' यह दुनियाँ भी एक स्वप्न है । मैं स्वत: भी एक स्वप्न हूँ । इस विराट् विश्व की समस्त सत्ता में एकमात्र स्वप्न को भग्न या विनष्ट हुआ मानकर अपने तई अविश्वसनीय न बनें । मैं इस स्वप्नजाल के सारे ताने-बाने में एक बार उलझ जाना चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ कि उलझ-उलझाकर उस महास्वप्न में अपने आपको भी लीन कर दूँ । दुख और उसके अगाध को मैं नहीं मानता ।'[1]

स्वप्न में सत्य कुछ नहीं होता, संसार में भी सब कुछ मिथ्या होता है । अंत: लेखक का जगत् को स्वप्न कहना समीचीन प्रतीत होता है ।

वाजपेयी जी को ईश्वर के प्रति बाल्यावस्था से ही अटूट आस्था रही है, तथापि, कभी-कभी ईश्वर का अन्यायपूर्ण व्यवहार देखकर उसे कोसता हुआ 'रात के दो बजे' कहानी का मथुराप्रसाद कारागृह में सोचता है-' मैं वही करता हूँ, जो इस सृष्टि में नित्य होता रहता है । उन बच्चों का क्या अपराध होता है, जो पैदा होते-होते मर जाते हैं ? इसका उत्तरदायी कौन है ? तूने एक खिलौना बनाया और तोड़ डाला । ---तो मूर्ख, तू उसे बनाता ही क्यों है ? ---- दोनों परिस्थितियों में क्या अंतर है ? बालक मिट्टी का घरौंदा, बालू में और धूल में बनाता है और बन जाने के बाद एक क्षण देखता है कि कैसा बना है और फिर लात से कुचलकर एक ओर चल देता है । ईश्वर की सत्ता, उसकी यह रचना, बालक से किस अर्थ में बड़ी है ।'[2]

एक क्षण के लिए मथुराप्रसाद को ईश्वर औघड़ लगता है, परंतु इससे ईश्वर के प्रति वाजपेयी जी के हृदय में जो श्रद्धा है, उसमें अंतर आने पाया है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । परिस्थितिवश पात्र के विचारों में परिवर्तन होता रहता है । ईश्वर की अदृष्ट सत्ता को स्वीकार करते हुए 'शबनम' कहानी में माधव कहता है -' शायद आप अदृष्ट की सत्ता को मानते हैं । प्रत्येक आस्तिक पुरुष उसे मानता है । पर मैं नहीं मानता था । मेरा सदा से यही विश्वास रहा कि अपने जीवन का निर्माता मनुष्य स्वयमेव है । परंतु अब मुझे पता चला कि एक शक्ति ऐसी भी है, जो मनुष्य की शक्ति ही नहीं, उसकी कल्पना से भी परे है ।'[3]

~~1- कबाड़ी का ताजमहल, पृ0 119~~

1- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 112

2- बात एक नाते की, पृ0 98-99

3 - लोकप्रिय कहानियाँ, पृ. 41

ईश्वर की इस अदृष्ट सत्ता में लेखक का सदैव विश्वास रहा है ।

मृत्यु :

वाजपेयी जी मानते हैं कि मृत्यु प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य है, फिर उससे भय कैसा ? 'दो बहनें' उपन्यास में ज्ञानप्रकाश कहता है -' --- मैं न दुखों से डरता हूँ, न मृत्यु से । काल की लपलपाती हुई रक्तपिपासु जिह्वाओं को मैं आम्रवन की कोपलों के रूप में देखता हूँ । मुझे किसी का भय नहीं है । जीवन के अंदर असमय फूट पड़नेवाले ज्वालामुखी को चुटकियों में मसल डालने का मैं अभ्यासी रहा हूँ ।'[1]

लेखक को महाकाल की रक्तपिपासु जिह्वाओं में आम्रवन की कोपलों के दर्शन होते हैं । कोपलें नयेपन का निर्देश करती है । इसी प्रकार-मृत्यु भी नये जीवन का ही सूचन करती है । सब कार्यों में अदृष्ट का हाथ रहता है । ज्ञानप्रकाश आगे कहता है - 'अदृष्ट का हास तो जीवन पर ही फूटता, लगता और विलसित होता है, किन्तु मृत्यु से परे जीवन की जो अमर स्थिति है, अदृष्ट का वह निरंकुश जनक भी उस पर हँसने में क्या कभी समर्थ हो सका है ?--- मृत्यु से बढ़कर जीवन की चरमशान्ति, चरम पवित्रता, मैं नहीं मानता । प्रत्येक क्षण मैं उसका स्वागत् करने को तैयार हूँ ।'[2]

दु:ख सम्बंधी उनका अपना निजी विचार है । लेखक का दृढ़ विश्वास है कि आकांक्षाओं का पूरा न होना ही दुख है । इस बात को दार्शनिक दृष्टिकोण से सोचते हुए 'चलते-चलते' उपन्यास में राजेन्द्र वैशाली से कहता है-' संसार में आज तक कोई भी ऐसा आदमी उत्पन्न नहीं हुआ, जिसकी सभी अभिलाषाएँ पूरी हो गई हों । आम की मंजरी में जितनी अमियाँ नन्हीं-नन्हीं-सी फलती है, वे सभी पककर, टूटकर रसदान नहीं करतीं । बहुतेरी तो आरंभ में ही आँधियों में समाप्त हो जाती हैं । ऐसे ही मनुष्य की सारी आशाएँ भी पूरी नहीं हुआ करतीं। दु:ख को जीवन के साथ कुछ ऐसी निकटता है, जैसी दुग्ध और पानी में होती है ।हमारी आकांक्षाएँ भी जीवन में उतनी निकटता रखती है । दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं ।'[3]

लेखक के इस विचार की पुनरावृत्ति उनके 'गोमती के तट पर'[4] नामक उपन्यास में हुई है । उसमें भी वाजपेयी जी ने अमियों के उदाहरण द्वारा अपने विचार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है ।

~~2- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ० 49~~

1- दो बहनें, पृ0 170

2- दो बहनें, पृ0 171

3- चलते-चलते, पृ0 262

4- गोमती के तट पर, पृ. 187

अपनी कहानियों में भी वाजपेयी जी का यही दृष्टिकोण प्राप्त होता है । वे मानते हैं कि मनुष्य मृत्यु से अपने को नहीं बचा सकता । प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है । इस विषय में 'चार साथी' कहानी का शीतलदीन कहता है -" मृत्यु की हर घड़ी निश्चित है, क्षण निश्चित है । कोई कहीं भी रहे, मरनेवाले को कोई नहीं बचा सकता ।"[1] मृत्यु के लिए सब समान है । इसीलिए शीतलदीन कहता है -"मुश्किल तो यह है कि काल किसी का मुख नहीं देखता । वह इस बात की परवा नहीं करता कि जिस व्यक्ति को मैं गले से नीचे उतार रहा हूँ, उसके लिए एक क्षण या वर्ष भर का क्या महत्त्व है ।"[2] लेखक के मन में मृत्यु का तनिक भी भय नहीं है । मौत से डरकर वह प्राकृतिक सौंदर्य का आकर्षण नहीं छोड़ सकता । इस सम्बंध में 'नियम-नियम : कायदा-कायदा' कहानी में रीता कहती है -" मौत आदमी को खा जाती है । एक मौत ही तो है जिसका आगमन मनुष्य के साहस को ही नहीं, उसकी बड़ी से बड़ी कामना को भी निगल जाता है, पर क्या इस भय से हम प्रकृति के सौंदर्य को देखना और मन में-प्राण में सँजोकर रखना छोड़ सकते हैं ?"[3]

निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि मौत से डरनेवालों में लेखक नहीं है । उसकी निर्भीकता का परिचय तो शीतलदीन के इस कथन द्वारा प्राप्त होता है -" यह मौत- औत किसी को थोड़े ही मारती है । मारती तो असल में ज़िंदगी है, ज़िंदगी ।"[4]

साहित्यिक विचार

डा0 बैजनाथ गुप्त ने वाजपेयी जी को 'मूलत: आदर्शवादी उपन्यासकार'[5] कहा है । डा0 सुषमा धवन ने उन्हें 'व्यक्तिवादी'[6] घोषित किया है । कुछ आलोचक उन्हें यथार्थवादी, तो कुछ उन्हें आदर्शोन्मुख यथार्थवादी मानते हैं ; किंतु उनकी कुछ एक रचनाओं के आधार पर उन्हें आदर्शवादी, यथार्थवादी या व्यक्तिवादी मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता । वस्तुत: वाजपेयी जी किसी 'वाद' के चक्कर में नहीं पड़े हैं, अत: वाद के घेरे में उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को सीमित कर देना अनुपयुक्त लगता है । आदर्श के सम्बंध में अपने विचार प्रकट करते

~~1- मोमबत्ती के तट पर, पृ0 187~~

1- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 168

2- लोकप्रिय कहानियाँ, पृ0 165-66

3- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 53

4- स्नेह, बाती और लौ, पृ0 17

5- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व, डा0 बैजनाथ गुप्त, पृ0 129.

6- हिन्दी उपन्यास, डा. सुषमा धवन, पृ. 108

हुए 'उस क्षण का सुख ' कहानी में सुरेन्द्र अपनी प्रेयसी वेश्या शकुन से कहता है -'आदर्श ऐसी चीज़ नहीं, जिसकी सोलह आने पूर्ति समाज ने कर पायी हो । बुराइयाँ हममें रही हैं और रहेंगी ; किंतु आदर्श को छोड़कर हम भाग नहीं सकते । चलेंगे हम उसको आगे देखकर ? तभी एक चीज़ आगे रखनी ही पड़ेगी और वह है आदर्श । वह शिव है, सत्य और सुंदर । उसके प्रति हमारा विद्रोह कैसा ?'[1]

वाजपेयी जी जीवन में आदर्श को अनिवार्य मानते हैं । उनकी दृष्टि में केवल यथार्थ का कुछ मूल्य नहीं है । आदर्श एवं यथार्थ के सम्बन्ध में 'हाँ, वही रात ' कहानी की कल्पना कहती है -'एक तो आदर्श से भिन्न यथार्थ कुछ नहीं है । आदर्श स्थिर है, दृढ़ है, निश्चित और उदात्त है । यथार्थ अस्थिर, चंचल,अपरूप और भ्रामक है । यथार्थ केवल प्रकृति का प्रकट रूप है, इसीलिए वह कहीं-कहीं अपरूप भी है । आदर्श सत्य के अप्रकट रूप की कल्पना है । ऐसे रूप की कल्पना, जो असत्य से दूर और सदा के लिए शिव तथा सुन्दर है । मनुष्य जो नहीं बन सका, आदर्श उसकी निर्माण की कल्पना है । मनुष्य का जो रूप आज है, जब वह भविष्य के कल में रहेगा ही नहीं, तब उसकी कल्पना क्षण-स्थायी हो जायगी । कला में हम उसी सत्य को रूप, आकार और वाणी देने की चेष्टा करते हैं, जो सदा अक्षय और मंगलमय होता है ।'[2]

उपर्युक्त उद्धरण में वाजपेयी जी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि आदर्श क्या है, यथार्थ क्या है तथा इन दोनों में क्या अन्तर है । लेखक की दृष्टि से यथार्थ की अपेक्षा आदर्श का अधिक मूल्य है । आदर्श के अभाव में मनुष्य अपने जीवन में 'सत्यम्', 'शिवम्' एवं 'सुन्दरम्' की कल्पना को साकार नहीं कर सकता । उपर्युक्त उद्धरण से यह भी प्रतीत होता है कि लेखक सत्य का केवल मंगलमय रूप ही चाहता है । उसका कथन है- ' जो लोग रोटी और वासना की अनवरत भूख से कभी विकल और बेहोश नहीं हुए, उन्हें सत्य के साथ मज़ाक करने का कोई हक़ नहीं है । सत्य स्वप्न नहीं है । वह कल्पना भी नहीं है । सत्य तो साधना की चिनगारी है , अनुभूति की कटुता और वेदना का चीत्कार है । यदि आप सोचते हैं कि सत्य केवल उज्ज्वल ही उज्ज्वल होता है, तो यह स्थूल दृष्टि होगी । माना कि सत्य

1- बात एक नाते की, पृ0 133-34

2- बात एक नाते की, पृ0 44

का कर्ण ग्रहण सूक्ष्म दृष्टि की अपेक्षा रखता है, किन्तु आंतरिक दृष्टि से अंतर के ज्वालामुखी की उज्ज्वलता का एक धूमिल विस्फोट भी होता है ।----"[1]

इस उद्धरण में लेखक ने सत्य के जिस रूप की चर्चा की है, वह उसके आदर्श को ही प्रस्तुत करता है । वाजपेयी जी के सत्य का ठोस रूप ही स्वीकार्य है । उनकी 'हारजीत' कहानी के एक पात्र अशोक के कथनानुसार " आदर्श का निर्माण एक दिन में नहीं होता । वह युगों की साधना से उत्थित होता है ।"[2] उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर उन्हें आदर्शवादी कहा जा सकता है ।

साहित्यकार का कर्तव्य : वाजपेयी जी ने अपना साहित्य-सृजन केवल मनोरंजन के हेतु नहीं किया है, वरन् उनका उद्देश्य समाज का पथ-प्रदर्शन भी रहा है । वे मानते हैं कि साहित्यकार के कर्तव्य को सीमित अर्थ में नहीं लिया जा सकता । इस विषय में साक्षात्कार के समय उन्होंने कहा था -"साहित्यकार का कर्तव्य किसी भी एक व्यक्ति,समाज या राष्ट्र के लिए नहीं है, अपितु संपूर्ण मानव-समाज के लिए है । मानव-कल्याण में बाधा पड़े, तो रूढ़ियों एवं परम्पराओं को तोड़ना ही पड़ेगा । मानवता कभी न मरने पाये, मनुष्य सदा सुखी रहे, इससे बढ़कर एक कलाकार का और क्या उद्देश्य हो सकता है ?"[3] वाजपेयी जी के प्रस्तुत कथन में भी उनका आदर्शवादी रूप ही मुखरित हुआ है । अत: कहा जा सकता है कि उनके विचार का कलाकार आदर्शवाद को लेकर चलनेवाला ही व्यक्ति हो सकता है । इसके अतिरिक्त संपादक के कर्तव्य के सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार प्रकट करते हुए सक्सेना जी द्वारा 'दो संपादक' कहानी में कहलवाया है -" संपादकीय कर्तव्य केवल उल्टी-सीधी बातें लिख देने से ही नहीं समाप्त हो जाता । इसके लिए चाहिए संसार की गतिविधि का अप-टू-डेट ज्ञान और दूरदर्शिता ।"[4]

वाजपेयी जी ने 'संसार', 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं के संपादन का उत्तरदायित्व निभाया है, अत: उनका पूर्व अनुभव ही उपर्युक्त उद्धरण में सक्सेना जी के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है ।

1- स्नेह,बाती और लौ, पृ0 144

2- खाली बोतल, पृ0 261

3- वाजपेयी जी से साक्षात्कार, दिनांक 20-10-68

4- मधुपर्क, पृ0 98

होता है ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाजपेयी जी ने जीवन और जगत सम्बंधी आष्मितों को अत्यंत व्यावहारिक धरातल पर स्पष्ट करके उन्हें जन-साधारण के लिए अत्यंत बोधगम्य बना दिया है । सामाजिक समस्याओं के सम्बंध में उनके विचार बेलाग और निष्पक्ष हैं । समाज के लिए जो कुछ वरेण्य रहा है, वाजपेयी जी ने उसका समर्थन किया है, जो कुछ गर्हित है, अस्वास्थ्यकर है, उसका उन्होंने कड़ा विरोध किया है । प्रेम और वासना के सम्बंध में उनके विचारों को जानकर कोई भी सामान्य पाठक उनके सम्बंध में गलत धारणा बनाये बिना नहीं रह सकता ; किंतु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो वाजपेयी जी ने जिस सत्य को अपनी आँखों देखा था, उसे प्रस्तुत करने में तनिक भी संकोच नहीं किया और उन घटनाओं तथा दृश्यों से निष्कर्ष रूप में उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किये, वे उनकी अनुभूति पर आधारित हैं । वाजपेयी जी के विचार निष्पक्ष जीवन-सत्य के उद्घाटक हैं । उनके इन्हीं बहुविध विचारों से उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है, जिसकी चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे ।